Con. 3. VII. 21. 48
350

अंक 7
संख्या 21

मंगलवार
7 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी).. 1375-1450
[अनुच्छेद 15, अनुच्छेद 20, नये अनुच्छेद 20-क, अनुच्छेद 21, 22,
नये अनुच्छेद 22-क और अनुच्छेद 23 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

मंगलवार, 7 दिसम्बर सन् 1948 ई.

उपाध्यक्ष (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः काल दस बजे आरम्भ हुई।

विधान का मसौदा-(जारी)

अनुच्छेद 15-(जारी)

*__उपाध्यक्ष:__ (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) अब हम अनुच्छेद 15 पर आगे विस्तुत वाद-विवाद कर सकते हैं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर__ (बम्बई : जनरल): क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं, श्रीमान्, कि आप इस विषय को कुछ समय के लिये स्थगित कर दें?

*__उपाध्यक्ष:__ सभा की क्या यही इच्छा है?

*__माननीय सदस्यगण:__ जी हां।

अनुच्छेद 20

*__उपाध्यक्ष:__ तो हम आगे के अनुच्छेद को ले सकते हैं, अर्थात् अनुच्छेद 20 को।

सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है कि:

"अनुच्छेद 20 को विधान का अंग माना जाये।"

मेरे पास अनेक संशोधन आये हैं। उनको मैं पढ़ कर सुनाऊंगा। संशोधन संख्या 614 को पेश करने की अनुमति नहीं दी जायेगी क्योंकि उसका निषेधात्मक प्रभाव है।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[उपाध्यक्ष]

संशोधन संख्या 614 और 616 एक ही से हैं; संशोधन संख्या 614 को पेश किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 20 के आरम्भ में 'subject to public order, morality and health' (लोक-व्यवस्था, शील तथा स्वास्थ्य के अधीन रहते हुये) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

श्रीमान्, भूल से ये शब्द रह गये थे। माननीय सदस्यों ने इन शब्दों को अनुच्छेद 19 में भी देखा होगा और ठीक बात तो यह है कि इन शब्दों को अनुच्छेद 20 में भी रखना चाहिये, क्योंकि हमारा यह आशय नहीं है कि धर्म-सम्बन्धी विषयों में निरपेक्ष अधिकार प्रदान किया जाये। जब कभी लोक की व्यवस्था, शील और स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हो तो राज्य, इन समस्त संस्थाओं और इनके सभी कार्यों के आनियमन का अधिकार स्वयं अपने हाथ में रख सकता है।

***उपाध्यक्षः** यदि संशोधन संख्या 616 पर आग्रह किया जाता है तो मैं उस पर मत ले सकता हूं। क्या इस विषय पर किसी सदस्य को कुछ कहना है?

(संशोधन संख्या 616 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** मैं समझता हूं कि सूची संख्या 6 के संशोधन संख्या 614 पर एक संशोधन है। क्या उस संशोधन को पेश किया जायेगा?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): जी, हां। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 614 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये :

कि अनुच्छेद 20 को उसी अनुच्छेद के खण्ड (1) के रूप में रखा जाये और अन्त में निम्न नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:

"(2) Nothing in clause (1) of this article shall affect the operation of any existing law or prevent the State

from making any law for ensuring public order, public morality and public health."

[(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) की किसी बात से किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा लोक-व्यवस्था, लोक-शील और लोक-स्वास्थ्य का सुनिश्चय करने के लिये किसी विधि के बनाने में राज्य को अवरोध न होगा।]

श्रीमान्, अभी जिस संशोधन को डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है वह भी इसी आशय का है। मेरे विचार से "लोक की व्यवस्था, शील तथा स्वास्थ्य के अधीन" इस पदसंहति से संशोधन में सुझाई गई पदसंहति अधिक अच्छी होगी। "लोक-व्यवस्था आदि का सुनिश्चय करने के लिये" यह पदसंहति कदाचित् "लोक की व्यवस्था इत्यादि के अधीन" पदसंहति से उत्तम है। विधान में अन्य स्थानों पर इस प्रकार के मसौदा बनाने के ढंग को अपनाया गया है।

(सूची 1 के संशोधन संख्या 15 और 16 को तथा संशोधन संख्या 615 और 616 को पेश नहीं किया गया।)

*__श्री लोकनाथ मिश्र__ (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 20 के खण्ड (क) में 'maintain'(संधारण) शब्द के पश्चात् 'manage and administer' (प्रबन्धन और प्रशासन) शब्द रखे जायें।"

जिस व्यक्ति को धार्मिक और परोपकारी प्रयोजनों के लिये संस्थाओं के स्थापन और संधारण करने का अधिकार है उसे यदि वे संस्थायें लोक-व्यवस्था और लोक-शील अथवा स्थापित विधि का उल्लंघन न करें, तो उनके प्रबन्धन और प्रशासन का भी अधिकार होना चाहिये; अन्यथा कठिनाई होगी।

*__सैयद अब्दुर रऊफ__ (आसाम : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 20 के खण्ड (क) में 'religious and charitable purposes' (धार्मिक और परोपकारी प्रयोजनों) शब्दों के स्थान में 'religious, charitable and educational purposes' (धार्मिक, परोपकारी और शैक्षिक प्रयोजनों) शब्द रखे जायें।"

[सैयद अब्दुर रऊफ]

हम यहां एक ऐसे विषय पर विचार कर रहे हैं जो धार्मिक सम्प्रदायों को केवल धार्मिक और परोपकारी प्रयोजनों के लिये संस्थाओं के स्थापन और संधारण करने का अधिकार प्रदान करता है। धार्मिक शिक्षा उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितना धर्म। धार्मिक शिक्षा के अभाव में परोपकारी प्रयोजनों अथवा धार्मिक प्रयोजनों का कोई अर्थ न रह जायेगा। अत: मैं आशा करता हूं कि सभा मेरा संशोधन स्वीकार कर लेगी।

(सूची 1 के संशोधन नं. 17 तथा 620 और 622 पेश नहीं किये गये।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 20 के खण्ड (ग) में 'and immovable property' (और अचल सम्पत्ति) शब्दों के स्थान में 'immovable and incorporeal property' (अचल और अदैहिक सम्पत्ति) शब्द रखे जायें।"

खण्ड (ग) चल और अचल सम्पत्ति के अवापन की व्यवस्था करता है। ग्रन्थ-मुद्रण अधिकार अदैहिक सम्पत्ति है। वह न तो चल सम्पत्ति है और न अचल। इस संशोधन से यह कमी कदाचित पूरी हो जायेगी।

(संशोधन संख्या 623 से 625 तक पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** अनुच्छेद 20 पर अब विस्तृत वाद-विवाद किया जा सकता है।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, यद्यपि मैं अनुच्छेद 20 का समर्थन करता हूं, तथापि मैं यह कहूंगा कि उसकी वाक्य-रचना अथवा उसके क्षेत्र से मुझे प्रसन्नता नहीं है। मेरी बड़ी इच्छा है कि उसके (क) खण्ड में से 'और परोपकारी' शब्द निकाल दिये जायें। उसके पश्चात् अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अथवा उसके किसी विभाग को (क) धार्मिक प्रयोजनों के लिये संस्थाओं के स्थापन और संधारण करने का अधिकार होगा।" धर्म का प्रसार करने और धर्म को स्वतन्त्रतापूर्वक अंगीकार करने के अधिकार को स्वीकार कर लेने के पश्चात्, वास्तव में, यह आवश्यक हो जाता है कि धार्मिक संस्थाओं की स्थापना और संधारण करने के अधिकार को भी स्वीकार किया जाये।

परन्तु मूलाधिकार के रूप में यह स्वीकार करना कि कोई धार्मिक सम्प्रदाय और उसका विभाग अपने ही लाभ के लिये परोपकारी संस्थाओं का संधारण कर सकता है और समाज के किसी अन्य वर्ग को उसके लाभ से वंचित कर सकता है, बंधुता और एकराष्ट्रीयता की भावनाओं के सर्वथा विरुद्ध है।

हमें यह स्पष्ट रूप में समझ लेना चाहिये कि इस अनुच्छेद के क्या अर्थ हैं, बल्कि मैं तो यह कहूंगा कि क्या-क्या अनिष्टकर अर्थ हैं। इसका अर्थ यह है कि हिन्दू-सम्प्रदाय का सदस्य होने के नाते अथवा उस सम्प्रदाय के खत्री कहे जाने वाले एक वर्ग का सदस्य होने के नाते, इस अनुच्छेद 20 के अन्तर्गत मुझे एक प्याऊ खोलने का अधिकार है, जहां सबको पानी पिलाया जाता है। इस अनुच्छेद के अनुसार प्याऊ खोलने का अधिकार मुझे मूलाधिकार के समान प्राप्त होगा और उस प्याऊ में मैं खत्रियों अथवा अन्य सवर्ण हिन्दुओं को पानी पीने दूंगा तथा हिन्दू-सम्प्रदाय के अन्य वर्गों को नहीं पीने दूंगा, मुसलमान और ईसाइयों को तो बिल्कुल ही न पीने दूंगा। इसका यह अर्थ है कि ईसाइयों के हस्पताल में केवल ईसाइयों को ही भरती किया जायेगा और एक गैर-ईसाई को, चाहे उसे इलाज की कितनी ही आवश्यकता क्यों न हो, और चाहे वह ईसाइयों के हस्पताल के दरवाज़े पर पड़ा हुआ अन्तिम सांसें ही क्यों न ले रहा हो, वहां दाखिल न किया जायेगा। इसका अर्थ है कि सवर्ण हिन्दुओं को प्याऊ खोलने का मूलाधिकार होगा और साथ ही साथ अनुसूचित जातियों के सदस्यों को पानी न पिलाने का भी अधिकार होगा। श्रीमान्, इसका अर्थ यह है कि मुसलमान अपनी 'सबील' में गैर-मुसलमानों के पानी पीने पर रोक लगा सकता है। मुझसे तो हमेशा यह कहा गया है कि जाति और धर्म का भेदभाव किये बिना सबको मुफ्त पानी पिलाना इस्लाम धर्म के अनुसार एक बड़ा ही पुनीत कार्य है। यदि मेरे मुसलमान मित्र चाहते हैं कि मूलाधिकार के रूप में उनको यह अधिकार प्राप्त हो तो मुझे आश्चर्य होगा। मुझे इस बात पर आश्चर्य होगा यदि पिछड़ी हुई अथवा अनुसूचित जातियों के मेरे मित्र यह चाहें कि सवर्ण हिन्दुओं को यह मूलाधिकार हो कि वे ऐसी प्याऊ खोल सकें जिनमें अनुसूचित जाति के लोगों को पानी न पिलाया जाये। मुझे विश्वास है कि न तो मेरे मुसलमान मित्र और न अनुसूचित जाति के मित्र इस अधिकार को मूलाधिकार के रूप में प्राप्त करना चाहते हैं।

श्रीमान्, मेरे एक ईसाई मित्र ने जो शायद यह नहीं जानते कि उनके प्रति मेरे हृदय में बड़ा सम्मान है और मैं यह भी कहूंगा कि उनके प्रति मेरे हृदय में बड़ा

[श्री जसपतराय कपूर]

प्रेम है, मुझसे अभी एक दिन कहा कि ईसाइयों का एक विशेष वर्ग अपने लिये एक पृथक् हस्पताल चाहता है जिसमें मृत्यु-समय अथवा अपने अन्तिम समय वे ईसाई पादरियों से क्रिया-कर्म करा सकें। मेरी यह मन्शा नहीं है, श्रीमान्, कि उनको यह विशेष अधिकार और सुविधा न मिले। वे इस विशेष अधिकार और सुविधा को केवल अपने ही हस्पताल में नहीं, बल्कि देश के प्रत्येक हस्पताल में प्राप्त कर सकते हैं। प्रश्न यह नहीं है कि उनको यह सुवधिा अपने हस्पताल में मिले या अन्य हस्पतालों में, परन्तु प्रश्न यह है कि ईसाइयों के चिकित्सालयों को गैर-ईसाइयों को न भरती करने का अधिकार दिया जाये या नहीं। मैं ईसाई नहीं हूं, पर ईसाई-धर्म का मैं बहुत सम्मान करता हूं और मैं साहसपूर्वक यह कह सकता हूं कि किसी भी ईसाई-संस्था की ओर से अगर ऐसा किया जाता है तो यह काम वस्तुत: ईसाइयों के सिद्धान्तों के प्रतिकूल होगा। श्रीमान्, तो फिर ऐसे अधिकार को मूलाधिकार के रूप में क्यों स्वीकार किया जाये?

आज हमारा समाज असंगठित रूप में है। उसमें अनेक जातियां, मत और सम्प्रदाय हैं। हम इन साम्प्रदायिक संस्थाओं को अब तक सहन करते चले आये हैं और हमें कुछ और अधिक समय के लिये उनको सहन करना होगा। ऐसा कोई भ्रम न हो कि "और परोपकारी" शब्दों के हटाने से वर्तमान अधिकार अथवा वर्तमान रियायतें छिन जायेंगी। यह अधिकार नहीं हैं। यह रियायत तो समाज की कमज़ोरी के कारण हमें मिली है। इसलिये इस रियायत को तब तक रहने दिया जाय, जब तक कि समूचा राष्ट्र स्वयं ही यह अनुभव न करे कि यह एक ऐसी बात है जो कि समूचे देश के हितों के विरुद्ध है, जो राष्ट्र के ऐक्य के विरुद्ध है और जो भ्रातृत्व अथवा बंधुत्व की भावना के प्रतिकूल है। जब तक समाज स्वयं इन बातों का अनुभव न करे तब तक इस रियायत को रखा जाये। पर प्रश्न तो यह है कि क्या यह जरूरी है कि इस अधिकार या रियायत को विधान में लिपिबद्ध करके आगे के लिये स्वीकार किया जाये? आप तो न केवल इसे विधान में लिपिबद्ध कर रहे हैं, बल्कि इसको इतना महत्त्वपूर्ण बना रहे हैं कि मूलाधिकार के रूप में इसे रखने जा रहे हैं।

मैं माननीय सदस्यों से निवेदन करूंगा कि वे "और परोपकारी" शब्दों के रहने देने का जो गम्भीर अर्थ होगा, उसको समझें। मैं अपने यहां का एक उदाहरण दूंगा और उससे माननीय सदस्य समझ जायेंगे कि यदि हम इस अनुच्छेद को इसी वर्तमान रूप में स्वीकार कर लेंगे तो उससे क्या गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है। मेरे यहां कुछ वर्ष पूर्व एक उच्च वर्ण के हिन्दू ने किसी खास जगह

एक प्याऊ लगाया और उस प्याऊ पर अनुसूचित जाति के लोगों को पानी नहीं पिलाया जाता था। इससे हम लोगों को, विशेषकर कांग्रेसियों को बड़ा क्षोभ हुआ। हिन्दू-सम्प्रदाय के उस कट्टर धर्मपरायण वर्ग के पास कांग्रेसी गये और इस रोक को दूर करने की उससे प्रार्थना की। कट्टरपन्थियों ने इस बात को न माना। अन्त में फल यह हुआ कि साम्प्रदायिक दंगा हो गया। इसके बाद कुछ तो अपने आग्रह से और कुछ दबाव से हम उन आयंत्रणों को दूर करने में सफल हुये। पर यदि विधान-परिषद् इसी अयंत्रण अथवा वर्जनाधिकार को मूलाधिकार-सूची में मूलाधिकार के रूप में रखती है तो कट्टरपन्थी हमारे विधान की पवित्र पुस्तक को हमारे ही मुंह पर फैंकेंगे और कहेंगे कि "हमारे प्याऊ के सम्बन्ध में ऐसी रोक लगाने का हमें अधिकार देकर अब आप यह कैसी मूर्खतापूर्ण बातें कर रहे हैं।"

वे कहेंगे कि देश की सर्वोच्च संस्था ने, विधान-निर्मात्र पूर्ण-सत्ताधारी विधान-परिषद् ने जब इसे मूलाधिकार के रूप में स्वीकार कर लिया है, तो अब आप हमसे यह क्यों कहते हैं कि तुम गलती कर रहे हो, तुम्हें अपने प्याउओं को हिन्दू-सम्प्रदाय के समस्त वर्गों के लिये खोल देना चाहिये? इसलिये मैं सम्मान-पूर्वक सभा से प्रार्थना करूंगा कि वह इन शब्दों को निकालना स्वीकार कर ले।

श्रीमान्, मुझे यह बताया गया है कि इन शब्दों का रखना अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के हित में है। मैं यह नहीं समझ सकता कि यह किस प्रकार से किसी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के हित में है। मैं यह भी नहीं समझ सकता कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय के हित में भी यह किस प्रकार से है। यदि समस्त अल्पसंख्यकों को एकत्रित कर दिया जाये तो भी वे इतने धनवान् नहीं होंगे जितने कि बहुसंख्यक हैं। अतः यदि बहुसंख्यक सम्प्रदाय चाहे तो अल्पसंख्यक सम्प्रदायों की अपेक्षा बहुत अधिक संख्या में परोपकारी संस्थायें स्थापित कर सकता है और यदि बहुसंख्यक की इन परोपकारी संस्थाओं से अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के सदस्यों को लाभ नहीं उठाने दिया जाता और उनका प्रयोग नहीं करने दिया जाता तो वास्तव में अल्पसंख्यक सम्प्रदायों को ही हानि होगी, न कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय को। हां, यह उसके लिये एक कलंक-कालिमा ही होगा, पर यह एक दूसरी बात है। इस कारण मैं यहां अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के उपस्थित सदस्यों से निवेदन करूंगा कि वे इन शब्दों के निकालने पर सहमत हो जायें। यदि वे इन शब्दों के निकालने पर राज़ी हो जाते हैं तो मुझे विश्वास है कि सभा एकमत हो कर इन शब्दों का निकालना स्वीकार कर लेगी और इस अनुच्छेद में सुधार करेगी। यदि वे इस बात से सहमत नहीं हैं तो जिस रूप में यह अनुच्छेद

[श्री जसपतराय कपूर]

है उसी रूप में हमें इसे स्वीकार कर लेना चाहिये, क्योंकि हमें कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये जो उनको मान्य और रुचिकर न हो। हर्षपूर्वक नहीं, वरन् कुछ खेद और निराशा के साथ-साथ इन शब्दों में मैं अनुच्छेद 20 का समर्थन करता हूं और सभा से अन्तिम निवेदन करता हूं कि इन शब्दों के निकालने में वह सहमत हो। यदि आवश्यक हो तो, श्रीमान्, मैं माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर से निवेदन करूंगा कि वे इस खण्ड पर अन्तिम निर्णय अभी स्थगित रखें और अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के सदस्यों से परामर्श करें कि वे इन शब्दों के निकालने से सहमत हैं या नहीं और उसके बाद तदनुसार इस अनुच्छेद में संशोधन करें।

श्रीमान्, इन शब्दों के निकालने का सुझाव रखने के लिये एक और कारण है, यद्यपि वह कारण कुछ अधिक ठोस नहीं है। श्रीमान्, अन्तिम क्षण में मैं इस निर्बल तर्क पर ज़ोर दे रहा हूं, क्योंकि कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि सबल तर्क काम नहीं आते और अशक्त तथा निर्बल तर्क काम दे जाते हैं। इस उप-अध्याय का शीर्षक "धर्म-सम्बन्धी अधिकार" है और, श्रीमान्, "और परोपकारी" शब्द सचमुच ही इस अध्याय में ठीक प्रकार से नहीं बैठते। यदि अन्य तर्क के बल पर नहीं तो कम से कम पारिभाषिक आधार पर ही मैं माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर से इन शब्दों के निकालने से सहमत होने के लिये निवदेन करूंगा। इन शब्दों के साथ मैं अनुच्छेद 20 का समर्थन करता हूं।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम)**:** उपाध्यक्ष, मेरा विचार इस अनुच्छेद पर बोलने का नहीं था, पर मैंने यह देखा कि मेरे माननीय मित्र, जो कि अभी बोल चुके हैं, अल्पसंख्यकों से निवेदन करते ही रहे। श्रीमान्, मैं सभा से यह कहना चाहता हूं कि इस देश में कोई भी अल्पसंख्यक नहीं है। असाम्प्रदायिक राज्य में अल्पसंख्यक नाम की कोई वस्तु नहीं है। मुझे भी वही अधिकार है, मेरी भी वही स्थिति और कर्त्तव्य हैं, जो कि अन्य किसी व्यक्ति के। मैं चाहता हूं कि जो अपने आपको बहुसंख्यक सम्प्रदाय का समझते हैं, वे इस बात को भूल जायें कि आज इस देश में कोई अल्पसंख्यक हैं।

(**एक माननीय सदस्य:** धन्य, धन्य!)

***श्री तजम्मुल हुसैन:** श्रीमान्, अनुच्छेद 20 के सम्बन्ध में जहां तक मैं समझा हूं, मेरे माननीय पूर्व वक्ता मित्र, यह चाहते हैं कि खण्ड (क) को निकाल दिया जाये। मैं अभी अनुच्छेद 20 के खण्ड (क) को पढ़ कर सुनाता हूं। वह इस प्रकार है:

"प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अथवा उसके किसी विभाग को:

(क) धार्मिक और परोपकारी प्रयोजनों के लिये संस्थाओं के स्थापन करने और संधारण करने का अधिकार होगा।"

श्रीमान्, यह अनुच्छेद प्रत्येक व्यक्ति को, यदि वह चाहे तो, अपनी निज़ी धार्मिक संस्थायें खोलने का अधिकार प्रदान करता है, चाहे फिर वह किसी धर्म का हो अथवा किसी धर्म को मानता हो। यदि किसी व्यक्ति के पास धन है और मृत्यु-समय वह वसीयत करना चाहता है और किसी निज़ी रूप के परोपकारी अथवा धार्मिक प्रयोजनों के लिये अपनी सम्पत्ति को अर्पण करना चाहता है तो, श्रीमान्, मैं नहीं समझता हूं कि लोग इसमें क्यों बाधा डालें। क्योंकि जैसा कि मैं कह चुका हूं, धर्म, व्यक्ति और सृष्टिकर्त्ता के मध्य का एक निज़ी विषय है और यदि मैं यह चाहूं कि मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरी सम्पत्ति का किसी विशेष प्रयोजन के लिये प्रयोग हो तो मुझे ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि राज्य इसमें क्यों बाधा डालें। यह कोई ऐसा प्रश्न नहीं है, जिसमें सार्वजनिक हित की बात सन्निहित हो। यह तो केवल व्यक्ति की निजी इच्छा की बात है कि उसके धर्म का एक विशेष रीति से पालन हो।

*__काज़ी सैयद करीमुद्दीन__ (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): निजी अथवा सार्वजनिक संस्थाओं से माननीय सदस्य का क्या अर्थ है?

*__श्री तजम्मुल हुसैन:__

"प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अथवा उसके किसी विभाग को–

(क) धार्मिक और परोपकारी प्रयोजनों के लिये संस्थाओं के स्थापन और संधारण करने का अधिकार होगा।"

अनुच्छेद के ठीक यही शब्द हैं। मैं चाहता हूं कि ये शब्द जहां के तहां रहें। मैं इन शब्दों को निकालना नहीं चाहता हूं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मुझे कुछ नहीं कहना है।

*__उपाध्यक्ष:__ अब मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 20 के आरम्भ में 'Subject to public order, morality and health' (लोक की व्यवस्था, शील तथा स्वास्थ्य के अधीन रहते हुये) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 20 को उसी अनुच्छेद के खण्ड (1) के रूप में रखा जाये और अन्त में निम्न नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(2) Nothing in clause (1) of this article shall affect the operation of any existing law or prevent the State from making any law for ensuring public order, public morality and public health.' "

[(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) की किसी बात से किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा लोक-व्यवस्था, लोक-शील और लोक-स्वास्थ्य का सुनिश्चय करने के लिये किसी विधि के बनाने में राज्य को अवरोध न होगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 20 के खण्ड (क) में 'maintain (संधारण) शब्द के पश्चात् 'manage and administer' (प्रबन्धन और प्रशासन) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 20 के खण्ड (क) में 'religious and charitable purposes' (धार्मिक और परोपकारी प्रयोजनों) शब्दों के स्थान में 'religious, charitable and educational purposes' (धार्मिक, परोपकारी और शैक्षिक प्रयोजनों) शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 20 के खण्ड (ग) में 'and immovable property' (और अचल सम्पत्ति) के स्थान में 'immovable and incorporeal property' (अचल और अदैहिक सम्पत्ति) शब्द रखे जायें।"

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

**उपाध्यक्ष:* प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 20 को स्वीकार किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 20 विधान में जोड़ा गया।

नया अनुच्छेद 20-क

***उपाध्यक्ष:** अब हम मि. महबूब अली बेग के संशोधन संख्या 626 पर आते हैं। मैं इसे पेश करने की आज्ञा नहीं देता, क्योंकि सभा ने ऐसे ही दो संशोधनों को रद्द कर दिया है। वे दो संशोधन संख्या 612 और 440 हैं।

अब हम अनुच्छेद 21 पर आते हैं।

अनुच्छेद 21

***उपाध्यक्ष:** हम एक-एक करके संशोधनों पर विचार करेंगे।

संशोधन संख्या 627 नियम-विरुद्ध है, क्योंकि उसका प्रभाव निषेधात्मक है।

(संशोधन संख्या 628, 629, 630, 634 और 631 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 632। इस संशोधन के प्रथम भाग को, जो सैयद अब्दुर रऊफ के नाम से है, पेश करने की आज्ञा नहीं दी जाती है, क्योंकि वह शाब्दिक संशोधन होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। दूसरे भाग को मैं पेश करने की आज्ञा दे सकता हूं।

***सैयद अब्दुर रऊफ:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 21 में 'which' (जिनकी) शब्द के पश्चात् 'wholly or partly' (पूर्ण अथवा आंशिक) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है, तो यह अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा—"कोई भी व्यक्ति ऐसे करों के देने के लिये संबाधित न किया जायेगा जिनकी पूर्ण अथवा आंशिक आय किसी विशेष धर्म अथवा धार्मिक सम्प्रदाय की उन्नति अथवा संधारण में व्यय करने के लिये विशिष्ट रूप से नियत कर दी गई हो।" यदि मेरा संशोधन स्वीकार नहीं किया जाता है, तो किसी व्यक्ति

[सैयद अब्दुर रऊफ]

को ऐसे करों के देने के लिये संबाधित किया जा सकता है जिनकी आय का कुछ भाग धार्मिक प्रयोजनों के लिये नियत कर दिया हो। निश्चय ही यह वांछनीय नहीं है और मेरे विचार से यदि मेरा संशोधन स्वीकार नहीं किया जाता है तो इस अनुच्छेद के उद्देश्य का ही खण्डन हो जायेगा। इसलिये मैं आशा करता हूं कि मेरा संशोधन सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जायेगा।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 21 में 'the proceeds of which are' शब्दों के स्थान में 'on any income which is' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, पहले वाले संशोधन का प्रयोजन मेरे संशोधन से सिद्ध हो जायेगा और इन दोनों पर साथ-साथ विचार किया जाना चाहिये। अनुच्छेद में यह कहा गया है कि "कोई भी व्यक्ति ऐसे करों के देने के लिये संबाधित न किया जायेगा जिनकी आय (proceeds), इत्यादि इत्यादि"। यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो फिर वह इस प्रकार होगा : "कोई भी व्यक्ति किसी आय (income) पर ऐसे करों के देने के लिये संबाधित न किया जायेगा, इत्यादि, इत्यादि।" श्रीमान्, कर, समूची आमदनी (proceeds) पर नहीं दिये जाते, वरन् आय (income) पर दिये जाते हैं। समूची आमदनी का अर्थ पूर्ण प्राप्ति से है। कर समूची आमदनी पर नहीं लगाये जाते, बल्कि आय पर लगाये जाते हैं। यह ठीक है कि आमदनी शब्द की व्यापकता में कर की सीमा "जो किसी विशेष धर्म अथवा धार्मिक या परोपकारी संस्था की स्थापना या उसे चलाने के लिये विशेषतया विनियुक्त न कर दी हो" शब्दों द्वारा बांध दी गई है। किन्तु मेरा कहना तो यह है कि किसी व्यवसाय अथवा किसी सम्पत्ति की पूरी आमदनी किसी धर्म अथवा परोपकारी सम्प्रदाय के लिये लगाई नहीं जाती। और इसका कारण यही है कि धर्म अथवा धार्मिक सम्प्रदायों के लिये जो कुछ आय लगाई जाती है वह इतनी ही आय होती है जो वसूल रकम में से वसूली में किये गये खर्चे को और अन्य खर्चे को काट देने से बचती है। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि आय (income) शब्द अधिक उपयुक्त है और यदि इस शब्द को स्वीकार कर लिया जाये तो जो कठिनाई अपने संशोधन संख्या 632 को पेश करते हुये मि. सैयद अब्दुर रऊफ ने उपस्थित की

है, उसका भी निराकरण हो जायेगा। मैंने और उन्होंने यह अनुभव किया कि इस प्रसंग में कुछ कठिनाई आती है और उसे दूर करने के उद्देश्य से ही ये संशोधन रखे गये हैं।

(संशोधन संख्या 635 और 636 पेश नहीं किये गये।)

*__उपाध्यक्षः__ इस अनुच्छेद पर अब विस्तृत वाद-विवाद हो सकता है।

श्री गुप्तनाथ सिंह (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे आश्चर्य है कि भारतवर्ष में धर्म के नाम पर जो असंख्य अनाचार और अत्याचार हुए हैं, उन्हें आज हम दफा 21 द्वारा चिरस्थायी बनाने जा रहे हैं। जो 21 दफा है, उसमें कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति की धार्मिक संस्थाओं के नाम पर जो कुछ भी सम्पत्ति होगी उसे उसके ऊपर कर (टैक्स) देने से मुक्त कर दिया जायेगा। मैं समझता हूं कि भारतवर्ष में अब तक जितनी सम्पत्ति धर्म के नाम पर, धार्मिक संस्थाओं के नाम पर मंदिरों, मस्जिदों और गिर्जाघरों के नाम पर है, उससे देश का बहुत बड़ा अहित हो रहा है। कोई भी सामाजिक उपयोग नहीं है उस सम्पत्ति का। मैं यह चाहता हूं कि अपने असाम्प्रदायिक राज्य (सेकुलर स्टेट) में अब इस प्रकार की धांधली हमेशा के लिये रोक दी जाये। जो राज्य है, स्टेट है वह सब देवताओं से ऊपर है, वह देवताओं का देवता है। मैं कहता हूं कि जनता का प्रतिनिधित्व करने वाला राज्य यह भगवान ही है। इसलिए उसको प्रत्येक प्रकार की साम्पत्तिक स्त्रोत से अवश्य ही कर (टैक्स) मिलना चाहिये। इसलिये सम्पत्ति जो धर्म के नाम पर है, धार्मिक संस्थाओं के नाम पर है, उन पर अवश्य टैक्सेशन रखा जाना चाहिये। मुझे भय है कि यदि दफा 21 को इस विधान में से निकाला न गया तो कर-मुक्त होने के लिये अधिकांश पूंजीपति ज़मींदार अपनी सम्पत्ति को धर्म की उन्नति के लिये लिख देने की चेष्टा करेंगे और स्वयं धर्म-ध्वजा बन कर धर्म के नाम पर धांधली मचाते रहेंगे। इस प्रकार हमारा राज्य-कर स्रोतों के बन्द हो जाने से दिवालिया हो जायेगा। अतः दफा 21 को रख कर मुल्लों, पंडों और पादरियों का विधान न बनायें। बस, मुझे विशेष कुछ नहीं कहना है।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं दोनों संशोधनों का विरोध करता हूं। अनुच्छेद में यह कहा गया है कि उन आयों पर कर नहीं लिया जायेगा जो किसी धार्मिक सम्प्रदाय को सहायता देने के लिये विशिष्ट रूप से नियत कर दी गई हों। सैयद अब्दुर रऊफ के संशोधन के अनुसार हमें

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

'समस्त अथवा आंशिक' शब्दों का प्रयोग करना चाहिये। मेरा विश्वास है कि समस्त में अंश निहित है, इस कारण यह संशोधन अनावश्यक है। मि. नज़ीरुद्दीन अहमद द्वारा पेश किया हुआ दूसरा संशोधन (संख्या 633) अनुच्छेद के उद्देश्य से पूर्णतया असंगत है। इस अनुच्छेद में कहा गया है कि अतीत काल की उस प्रथा के विरुद्ध, कि बादशाह जिस धर्म को मानते थे उस धर्म को महत्त्व देने के लिये एक प्रकार का कर लगाते थे, इस अनुच्छेद का यह आशय है कि ऐसे किसी नाम अथवा रूप का कर न लगे, जिसकी आय किसी विशिष्ट सम्प्रदाय अथवा वर्ग के प्रोत्साहन के लिये निश्चित कर दी गई हो।

इसके विपरीत मि. नज़ीरुद्दीन अहमद अपने संशोधन द्वारा यह चाहते हैं कि समस्त मन्दिरों और धार्मिक स्थानों की आय को कर से मुक्त किया जाये। इस बात का विचारान्तर्गत विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है। अनुच्छेद 21 में केवल यही बात है कि राज्य द्वारा कोई ऐसा कर नहीं लगाया जायेगा, जिसकी आय किसी विशिष्ट धार्मिक सम्प्रदाय की उन्नति के लिये नियत कर दी गई हो। मेरा निवेदन है कि इस अनुच्छेद को ज्यों का त्यों रखा जाये। अतीत काल में हमारे यहां ऐसे बहुत से बादशाह भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के हुये हैं, जिन्होंने अनेक प्रकार के कर लगाये। मस्जिदों की आर्थिक सहायता करने के लिये मुसलमान बादशाह एक विशेष कर लेते थे। ईसाइयों ने इस देश में ऐसा नहीं किया। प्राचीन हिन्दू राजा भी तिरुप्पनी नाम का कर मेरे प्रदेश के एक विशेष मन्दिर अथवा मन्दिरों के लिये लेते थे। एक असाम्प्रदायिक राज्य के लिये, जिससे यह आशा की जाती है कि वह सब सम्प्रदायों को समदृष्टि से देखेगा और अन्य सम्प्रदायों को हानि पहुंचा कर किसी विशिष्ट सम्प्रदाय को प्रोत्साहन न देगा, यह प्रावधान नितान्त आवश्यक है। स्वतंत्रता तथा धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार-पत्र का यह आवश्यक अंग है कि उसमें ऐसा प्रावधान हो कि किसी विशेष सम्प्रदाय को किसी अन्य सम्प्रदाय से अधिक लाभ न पहुंचे। यह अनुच्छेद बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है और यह समस्त अल्पसंख्यकों अथवा धार्मिक प्रवृत्ति के हितों का संरक्षण करता है। अत: उन सदस्यों से, जिन्होंने संशोधन पेश किये हैं, मेरा निवेदन है कि वे उन संशोधनों पर ज़ोर न दें और इस अनुच्छेद को, जैसा है वैसा ही स्वीकार करें।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं संशोधन संख्या 632 अथवा 633 को स्वीकार नहीं करता हूं।

*__श्री एच. जे. खांडेकर__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं बोलना चाहता हूं।

*__उपाध्यक्षः__ अब तो बहुत विलम्ब हो गया है। अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 21 में 'which' (जिनके) शब्द के पश्चात् 'wholly or partly' (पूर्ण अथवा आंशिक) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 21 में 'the proceeds of which are' शब्दों के स्थान में 'on any income which is' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 21 को विधान का अंग माना जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 21 विधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 22

*__उपाध्यक्षः__ सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है:

"कि अनुच्छेद 22 को विधान का अंग माना जाये।"

पहला संशोधन है नं. 637। यह नियम-विरुद्ध है, चूंकि इसका प्रभाव निषेधात्मक है। संशोधन संख्या 638 के प्रथम भाग को पेश करने की आज्ञा नहीं

[उपाध्यक्ष]

दी जाती है, क्योंकि उसका प्रभाव निषेधात्मक है। संशोधन संख्या 638 का दूसरा भाग पेश किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 638 और 639 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 640। आप केवल एक विकल्प को पेश कर सकते हैं।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रथम विकल्प को पेश करता हूं।

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:–

'22. No person attending an educational institution maintained, aided or recognised by the State shall be required to take part in any religious instruction in such institution without the consent of such person if he or she is a major or without the consent of the respective parent or guardian if he or she is a minor.' "

(22. राज्य द्वारा संधारित, सहायता प्राप्त अथवा अभिज्ञात किसी शैक्षिक संस्था में जाने वाले किसी व्यक्ति को उस संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिये, यदि वह प्राप्त वयस्क है, तो उसकी सहमति के, और यदि वह अवयस्क है तो उसके माता-पिता अथवा संरक्षक की सहमति के बिना, संबोधित न किया जायेगा।)

श्रीमान्, वर्तमान रूप में विधान के मसौदे का अनुच्छेद 22, राज्य द्वारा सहायता-प्राप्त विद्यालयों में अथवा राज्य की शैक्षिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने में रुकावट डालता है। राज्य की संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा को रोकना एक असाम्प्रदायिक राज्य के लिये आवश्यक नहीं है। श्रीमान्, धार्मिक शिक्षा देना राज्य के असाम्प्रदायिक स्वरूप, अथवा तटस्थता के प्रतिकूल नहीं होगा। यदि राज्य विद्यार्थियों अथवा शिष्यों को उस धर्म का अध्ययन करने के लिये विवश करे, जिसको वे नहीं मानते हैं तो यह असाम्प्रदायिक राज्य की प्रवृत्ति के विरुद्ध होगा। परन्तु यदि शिष्य अथवा उनके माता-पिता यह चाहते हैं कि इन संस्थाओं में उनके धर्म की शिक्षा दी जाये तो यह न राज्य के असाम्प्रदायिक स्वरूप के

प्रतिकूल होगा और न राज्य द्वारा धार्मिक विषयों के सम्बन्ध में ग्रहण की हुई तटस्थता का ही इससे उल्लंघन होगा। यदि पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा देनी ही हो तो मेरा संशोधन उसके लिये मार्ग प्रशस्त करता है। वह विषय को निषेधात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। उसमें यह नहीं कहा गया है कि चाहे कुछ भी हो, शैक्षिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दी ही जायेगी। सिर्फ यह कहा गया है कि किसी व्यक्ति को किसी पाठशाला में उस धर्म का अध्ययन करने के लिये जिसे वह नहीं मानता विवश नहीं किया जायेगा। इसलिये मेरा संशोधन बिल्कुल निर्दोष है और वह विधान के तत्त्वों का किसी प्रकार से भी विरोध नहीं करता है।

श्रीमान्, बहुत से देशों ने, जिनका स्वरूप किसी धर्म पर आश्रित नहीं है, धार्मिक शिक्षा देने की आवश्यकता को मान लिया है। उन देशों ने धार्मिक शिक्षा को अनिवार्य भी कर दिया है अर्थात् उन लोगों के लिये अनिवार्य जो अपने धर्म की शिक्षा अपने बच्चों को दिलाना चाहते हैं। उन्होंने यह ठीक नहीं समझा कि अपने असाम्प्रदायिक राज्य में धर्म का पूर्ण बहिष्कार कर दिया जाये। अत: मेरा यह विचार है कि धार्मिक शिक्षा का बहिष्कार न करने पर भी हम अपने राज्य के असाम्प्रदायिक स्वरूप का किसी प्रकार से भी खण्डन नहीं कर रहे हैं। जैसा कि मेरे संशोधन में विचार प्रस्तुत किया गया है हम इस विषय को भविष्य पर तथा संसद् पर छोड़ सकते हैं। मेरे संशोधन के अनुसार धार्मिक शिक्षा के बारे में हम निश्चित रूप से अभी कुछ भी नहीं कह रहे हैं। हम केवल यही कह रहे हैं कि किसी व्यक्ति को उस धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिये विवश नहीं किया जायेगा, जिस धर्म का वह मानने वाला नहीं है। धार्मिक शिक्षा दी जाये या नहीं, इस विषय को संसद पर छोड़ दिया जाये। श्रीमान्, अपने संशोधन के द्वारा मैंने यही मन्तव्य यहां रखा है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, जो संशोधन मेरे नाम से है, उसमें सूची 1 के संशोधन संख्या 19 द्वारा आगे और संशोधन करने का मैंने प्रयास किया है। नियमानुसार यह संशोधन जिस प्रकार है, उसी प्रकार में मैं उसे पेश करूंगा। आरम्भ में मैंने जो संशोधन भेजा था वह इस प्रकार है:

"कि अनुच्छेद 22 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'22. The State shall not compel anyone to have religious instruction in a religion not his own in schools

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

> against his wishes, but the State shall endeavour to develop religious tolerance and morality among its citizens by providing suitable courses in various religions in schools."

(22. राज्य किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध पाठशालाओं में उसके धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म की शिक्षा पाने के लिये विवश नहीं करेगा, पर पाठशालाओं में विभिन्न धर्म के उपयुक्त पाठ्यक्रम की व्यवस्था करके राज्य अपने नागरिकों में धार्मिक सदाचार और सहन-शीलता को उन्नत करने का प्रयास करेगा।)

इस संशोधन पर मैंने सूची 1 के संशोधन संख्या 19 की सूचना दी है जिसमें यह कहा गया है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) और (3) को निकाल दिया जाये।"

मुझे विदित होता है कि खण्ड (1) का निकालना डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार नहीं किया पर इस खण्ड पर जो कुछ मैं कहना चाहता हूं, वह मैं कहूंगा।

*उपाध्यक्ष: संशोधन संख्या 20 का क्या हुआ ?

*प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना: मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं। कुछ शैक्षिक संस्थाओं को अपने दैनिक कार्यकाल के अलावा अन्य समय में धार्मिक शिक्षा देने की स्वतंत्रता इसमें दी गई है। श्रीमान्, असल उद्देश्य यह है कि किसी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय को उसके धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिये विवश नहीं किया जायेगा। यही वास्तविक प्रयोजन है। यद्यपि मैं इस प्रयोजन को भली-भांति समझता हूं, फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस खण्ड की रचना ऐसे व्यापक रूप में की गई है कि अल्पसंख्यकों के कारण बहुसंख्यक सम्प्रदाय को भी अपने बच्चों को किसी प्रकार की भी धार्मिक शिक्षा प्रदान कराने में यह बाधा होगी। जब कि यह उचित है कि अल्पसंख्यकों को अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिये बाध्य न किया जाना चाहिये वहीं यह भी ठीक है कि यदि उनके विद्यार्थियों की संख्या पर्याप्त हो तो उनको उनके धर्म की शिक्षा देने की सुविधा भी प्रदान की जानी चाहिये। राज्य द्वारा धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की मनाही नहीं होनी चाहिये। देश-विभाजन

के पश्चात् अब बहुसंख्यक सम्प्रदाय की संख्या 30, 33 करोड़ है और यदि ये लोग चाहते हैं कि उनके बच्चों को उनके धर्म की शिक्षा मिले, यदि इस अनुच्छेद को स्वीकार कर लिया जाता है, तो वे इस प्रकार की धार्मिक शिक्षा प्राप्त न कर सकेंगे। यह उचित नहीं है। मैं यह चाहता हूं कि उनको अपने धर्म की शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दिया जाये, बशर्ते कि वे अन्य सम्प्रदायों के बच्चों को, यदि वे पर्याप्त संख्या मैं हों तो, वही सुविधा प्रदान करने के लिये उद्यत हों। मि. मोहम्मद इस्माइल के संशोधन का यह दूसरा विकल्प है, पर उन्होंने तो प्रथम विकल्प ही प्रस्तुत किया है। दूसरा विकल्प सुन्दर है। वर्तमान रूप में बहुसंख्यक सम्प्रदाय को अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा प्राप्त कराने में यह खण्ड सचमुच बाधा डालेगा। उदाहरण के रूप में गोरखपुर में (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) अपने स्कूलों में गीता की शिक्षा नहीं दे सकेगा। मेरे विचार से ऐसा नहीं होना चाहिये। संसार के इन महान् धर्मग्रन्थों द्वारा सदाचार और सहिष्णुता का विकास होता है, इनका अध्ययन कराना चाहिये और मैं नहीं चाहता हूं कि मूलाधिकारों की कोई बात ऐसा करने से मना करे। इस विषय पर डॉक्टर अम्बेडकर से विचार-विमर्श किया और मैंने कह दिया कि खण्ड (1) और (3) को निकाल दिया जाय, जिससे कि कोई भी व्यक्ति लोगों की इच्छा के विरुद्ध बरबस किसी प्रकार की शिक्षा न दे सके, परन्तु यदि विभिन्न सम्प्रदायों के बच्चों की संख्या पर्याप्त हो तो उनको, धार्मिक शिक्षा प्रदान करने में राज्य द्वारा बाधा नहीं होनी चाहिये। खण्ड (3) पूर्णतया निरर्थक है। उसमें केवल यह कहा गया है:

> "(3) इस अनुच्छेद की किसी बात से, किसी समुदाय अथवा सम्प्रदाय के लिये, अपने समुदाय अथवा सम्प्रदाय के विद्यार्थियों को शैक्षिक संस्थाओं के दैनिक कार्यकाल के अतिरिक्त अन्य समय में धार्मिक शिक्षा देने में रुकावट न होगी।"

परन्तु मैं तो चाहता हूं कि खण्ड (1) को भी निकाल दिया जाये, क्योंकि ऐसा करने से राज्य स्कूल के बच्चों को गीता, बाइबिल इत्यादि की शिक्षा दे सकेगा पर किसी की इच्छा के विरुद्ध बरबस राज्य ऐसी शिक्षा नहीं दे सकेगा। अत: मैं चाहता हूं कि केवल खण्ड (2) ही रहे और राज्य बच्चों की इच्छा अथवा रुचि के अनुकूल तथा उनके संरक्षकों की अनुमति से धार्मिक शिक्षा प्रदान कर सके। यही मैं चाहता हूं, पर यदि यह मान्य नहीं है तो मैं प्रथम भाग के हटाने का आग्रह नहीं करूंगा। परन्तु खण्ड (3) को तो निकाल ही देना चाहिये। मैं डॉ. अम्बेडकर से प्रार्थना करूंगा कि वे इस बात का ध्यान रखें कि यह खण्ड

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

राज्य की संस्थाओं को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने से न रोके। यह खण्ड बहुत व्यापक है और उपरोक्त विचार का समावेश करने के लिये इसका मसौदा फिर से बनना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 642 और 647 समानार्थी हैं और दोनों पर साथ-साथ विचार होना चाहिये। संशोधन संख्या 642 को पेश किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 642 पेश नहीं किया गया।)

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में 'in any educational institution wholly' (राज्य-प्रणीवि से पूर्णत:) शब्दों के पश्चात् 'or partly' (अथवा अंशत:) शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान्, संशोधित रूप में खण्ड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"No religious instruction shall be provided by the State in any educational institution wholly or partly maintained out of State funds,"

(राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: अथवा अंशत: संधारित किसी शैक्षिक संस्था में, राज्य द्वारा कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी);

श्रीमान्, समस्त सद्भावनाओं के होते हुये भी मैं यह न समझ सका कि इस मूलखण्ड के निर्माताओं ने क्योंकर इस विशेष शब्दावली को ग्रहण किया है। मेरी दृष्टि में उनका "पूर्णत:" शब्द पर ज़ोर देना बड़ा कूटनीतिपूर्ण है। यदि वे "पूर्णत:" न कहते और केवल "राज्य-प्रणीवि से संधारित" ही कहते, तब तो बात समझ में आ सकती थी पर यदि वे यही कहते हैं कि 'राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: संधारित किसी संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी' तो मेरा प्रश्न होता है कि इन खास शब्दों को रखने में मसौदा बनाने वालों का क्या उद्देश्य हो सकता है। क्या मसौदा बनाने वालों का यह उद्देश्य है कि किसी संस्था में केवल तभी धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी, जब कि राज्य-प्रणीवि किसी संस्था के पाई-पाई खर्चे को स्वयं पूरा करे।

*__एक माननीय सदस्य:__ जी हां।

*__प्रोफेसर के.टी. शाह:__ यदि आपका उद्देश्य यही है, जैसा कि किसी को स्वीकार करते हुये मैं सुन रहा हूं तब तो उससे सहमत होना असम्भव है, और मैं यह कहने का साहस करता हूं कि आरम्भ के शब्दों में जिस सिद्धान्त की स्पष्ट घोषणा की गई है, उसी सिद्धान्त का उस शब्द द्वारा एक विलक्षण रूप में खण्डन कर दिया गया है। उदाहरणार्थ यदि किसी शैक्षिक संस्था को किसी गैर-सरकारी नीवि से कुछ आय होती है और उस संस्था के कुल खर्चे का 99 प्रतिशत खर्च राज्य-प्रणीवि द्वारा पूरा होता है और 1 प्रतिशत नीवि में पूरा होता है तो क्या यह कहा जायेगा कि वह संस्था राज्य द्वारा पूर्णत: संधारित नहीं है और नीवि अथवा अनुदान अथवा दान की 1 प्रतिशत सहायता के बल पर आपको धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था करने के मार्ग को खोल देना होगा। सार्वजनिक संस्थाओं में ऐसी धार्मिक शिक्षा का अर्थ सामान्यतया साम्प्रदायिक शिक्षा ही होता है।

इस प्रकार की धारा का यह अर्थ तथा व्याख्या न तो हो सकती है और न करने देनी चाहिये। केवल उन संस्थाओं के जो परादिक के अधीन आ जाती हैं—और इस परादिक को मैं बाद में अन्य संशोधन के साथ लूंगा—अन्य समस्त संस्थायें अथवा उनमें से अधिकांश लोक आगमों से पूर्णत: अथवा अंशत: संधारित हैं, चाहे लोक आगम राज्य द्वारा समस्त व्यय के रूप में हो अथवा किसी अनुदान के रूप में हो अथवा शुल्क इत्यादि के रूप में हो, जो जनता से नियमित रूप में प्राप्त की जाती है। अत: जैसा कि मैं समझता हूं, कोई भी सार्वजनिक संस्था किसी न किसी सम्प्रदाय की धार्मिक शिक्षा को—और मैं तो यहां तक कहूंगा कि विवादास्पद रूप की धार्मिक शिक्षा को बरबस लादे बिना न रहेगी।

यदि आप एक धर्म की शिक्षा देने की आज्ञा दे देंगे तो आपको अन्य धर्मों की शिक्षा प्रदान करने की आज्ञा न देना असम्भव हो जायेगा। उसका यह अर्थ है कि किसी सार्वजनिक संस्था में चाहे कितने ही विद्यार्थी अथवा उनके कितने ही वर्गों को शिक्षा दी जाती हो, यदि प्रत्येक वर्ग के लिये एक-एक विशेष छात्रवृत्ति देने वाला व्यक्ति अथवा खर्च के किसी खास मद के लिये—पुस्तकालय के लिये अथवा प्रयोगशाला के किसी साधन के लिये अथवा सामान्य प्रयोजन के हितार्थ कोई छोटी सी रकम दान करने वाला व्यक्ति मिल जाता है और उस दान के साथ यह शर्त लगा देता है कि उस संस्था में उसके धर्म की शिक्षा उसके वर्ग के छात्रों को दी जायेगी, तब तो मुझे इस बात का भय है कि आपकी शैक्षिक

[प्रो. के.टी. शाह]

संस्थायें विभिन्न मत मतान्तरों का अजायबघर बन जायेंगी। उनमें ऐसे झगड़े और विवाद होंगे, जिनकी आशा भी नहीं की जा सकती। प्रारम्भिक शब्दों द्वारा आप जिस बुराई को रोकने के लिये उतारू हुये हैं वह और भी अधिक बढ़ जायेगी और एक प्रकार से उस बुराई को जनता का सहयोग तथा समर्थन प्राप्त होगा।

वस्तुस्थिति यह है जिसके बारे में मैंने सोचा था कि मसौदा बनाने वालों के ये उद्देश्य कभी नहीं हो सकते। परन्तु एक मिनट पूर्व जो शब्द मुझे सुनाई दिया उससे यह प्रतीत होता है कि मसौदा बनाने वालों के उद्देश्यों से यह विचार ठीक उतना परे नहीं है, जितना परे अपनी अज्ञानता के कारण मैंने उसे समझा था। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी सुदूरवर्त्ती विचार के कारण अथवा किसी बात को अपने मन में रख कर मसौदा निर्माताओं ने इन शब्दों को ग्रहण किया है।

यदि सभा के किसी बड़े वर्ग की ओर से नहीं तो, अपनी ओर से बोलते हुये मैं यह चाहूंगा कि भारत में राज्य इस प्रकार की किसी भी व्याख्या से पूर्णतया पृथक् रहे।

यदि आप चाहते हैं, और मेरे विचार से यही ठीक भी है कि राज्य-प्रणीवि से संधारित किसी सार्वजनिक संस्था में धार्मिक शिक्षा न दी जाये चाहे राज्य-प्रणीवि द्वारा संस्था का पूरा खर्च चलता हो अथवा अनुदान, शुल्क, छात्रवृत्ति या किसी प्रकार की नीवि के रूप में राज्य के लोक-आगमों में से उसे कुछ सहायता मिलती हो; परन्तु राज्य-प्रणीवि के अतिरिक्त अन्य साधनों से संस्था का खर्च पूरा किये जाने के आधार पर धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की आज्ञा देना हास्यास्पद होगा और मेरे विचार से इस विधान के आधारभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध होगा।

मेरी दृष्टि में "राज्य-प्रणीवि" शब्द स्वयं बड़ा ही शंकास्पद है। राज्य-प्रणीवि का ठीक अर्थ क्या है? मैंने कई बार शिकायत की है कि इस मसौदे में यह एक बड़ा भारी दोष है कि इसमें परिभाषाओं का दु:खद अभाव है, इसके कारण अवसरानुकूल अथवा जिस प्रकार से भी व्याख्या करने वाला अपने कौशल-चातुर्य्य से सुझा सके, शब्दों का किसी भी अर्थ में प्रयोग किया जा सकता है। विशेषकर इस प्रसंग में किसी परिभाषा के अभाव में किसी व्यक्ति को, जो भी व्याख्या

युक्ति-युक्त प्रतीत हो उसके प्रति उसे यह कहने का अधिकार है कि कदाचित् मसौदा-निर्माताओं का भी यही उद्देश्य था। इस धारणा के कारण में अनुभव करता हूं कि इस खण्ड में "लोक-आगमों अथवा राज्य-प्रणीवि से पूर्णतः अथवा अंशतः संधारित" शब्दों को जोड़ कर संशोधन करने की आवश्यकता है।

मैं 'राज्य-प्रणीवि' शब्दों पर इतनी आपत्ति नहीं करूंगा जितनी कि 'अशंतः' शब्द के रखने पर मेरी आपत्ति है। यदि हम अपने प्रशासन-आदर्श के इस आधारभूत सिद्धान्त का पूर्णतया पालन करना चाहते हैं कि राज्य-प्रणीवि से पूर्णतः अथवा अंशतः संधारित किसी सार्वजनिक शैक्षिक संस्था में वह धार्मिक शिक्षा न दी जाये, जिसका स्वरूप अनिवार्यतः साम्प्रदायिक है तब तो मेरे विचार से 'अंशतः' शब्द को रखना चाहिये।

श्रीमान्, मेरे विचार से यह संशोधन यथार्थ व्यवहार ज्ञान, सत्यता और स्पष्टता से इतना परिपूर्ण है कि इस पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये और मैं विश्वास करता हूं कि इस सम्बन्ध में मुझे निराश नहीं किया जायेगा।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 643 जो कि सरदार हुकम सिंह के नाम से है।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में 'shall be provided' (दी जायेगी) शब्दों के पश्चात् 'or permitted' (अथवा न दिये जाने की अनुमति दी जायेगी) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

श्रीमान्, मुझे ज्ञात है कि अनुच्छेद 7 में 'राज्य' शब्द की जो व्याख्या की गई है, वह बहुत व्यापक है और उसमें समस्त प्राधिकारी आ जाते हैं, चाहे वे केन्द्र के हों अथवा राज्यों के हों, यहां तक कि उसमें स्थानीय संस्थाओं के भी प्राधिकारी आ जाते हैं। फिर भी मेरा विचार है कि यदि हम, जैसा कि मैंने प्रस्तावित किया है, "अथवा न दिये जाने की अनुमति दी जायेगी" शब्दों को प्रविष्ट न करेंगे तो उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी, हम एक असाम्प्रदायिक राज्य का

[सरदार हुकम सिंह]

निर्माण करने जा रहे हैं। जहां तक मैंने इस अनुच्छेद के उद्देश्य को समझा है, वह यह है कि राज्य से संधारित सब संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा न दी जाये। यदि यह अनुच्छेद अपने वर्तमान रूप में ही रहे तो इसका यह अर्थ होगा कि राज्य अथवा कोई भी प्राधिकारी इन संस्थाओं में कोई भी धार्मिक शिक्षा देने की व्यवस्था नहीं करेगा। मेरा अनुमान है कि इसमें आर्थिक उद्देश्य नहीं है। हम यह बंधन इसलिये नहीं लगा रहे हैं कि राज्य धार्मिक शिक्षा पर कुछ भी व्यय कर ही न सके, बल्कि हम इन संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के विरुद्ध व्यवस्था कर रहे हैं। और ऐसी दशा में हमारे उद्देश्य की तब तक पूर्ति नहीं होगी, जब तक कि हम धार्मिक शिक्षा का प्रदान करना निश्चित रूप से इन संस्थाओं में न रोक दें। यद्यपि इस प्रकार की धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में कोई प्रावधान नहीं बनाया गया है, फिर भी इस प्रकार की शिक्षा देने की अनुमति तक नहीं दी जानी चाहिये। मैं यह कहूंगा कि शिक्षकों के मस्तिष्क में यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि राज्य ने इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करने के सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं बनाया है, इसलिये धार्मिक शिक्षा का प्रदान करना आरम्भ करो और कोई अध्यापक अपनी कक्षा में ऐसी शिक्षा देना आरम्भ कर दे तो, जहां तक इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है, अध्यापक अथवा शिक्षकों के इस कार्य से उसका विरोध तो होगा ही नहीं। उस उद्देश्य की पूर्ति तो तभी हो सकती है, जब कि हम ऐसी शिक्षा देना पूर्णतया बन्द कर दें विशेषकर जब कि हम एक असाम्प्रदायिक राज्य का निर्माण कर रहे हैं। इसलिये मैं प्रस्ताव करता हूं कि "shall be provided" (दी जायेगी) शब्दों के पश्चात् " or permitted"(अथवा न दिये जाने की अनुमति दी जायेगी) शब्द प्रविष्ट किये जायें। जिससे कि उन संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा देने का अवसर ही न हो, जिनको राज्य आर्थिक सहायता देता है या जिन पर राज्य का नियन्त्रण है।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 644, जो सरदार भूपेन्द्रसिंह मान के नाम से है।

***सरदार भूपेन्द्रसिंह मान** (पूर्वी पंजाब : सिख): उपाध्यक्ष श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में से 'educational' (शैक्षिक) शब्द निकाल दिया जाये।"

और उस उपखण्ड को इस प्रकार रखा जाये :

'No religious instruction shall be provided by the State in any institution wholly maintained out of State funds;"

(राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: संधारित किसी संस्था में राज्य द्वारा कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी;)

जहां तक कि धार्मिक विषयों का सम्बन्ध है, राज्य पूर्ण तटस्थता का निर्वाह करे और अपने असाम्प्रदायिक स्वरूप को बनाये रखे। श्रीमान्, अल्पसंख्यक सम्प्रदाय का सदस्य होने की हैसियत से मैं इस अनुच्छेद का हार्दिक स्वागत करता हूं और आशा करता हूं कि इस अनुच्छेद में निहित सिद्धान्त के अनुसार राज्य कार्य करेगा और राज्य के समस्त कार्य-क्षेत्रों में अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के सदस्यों को शंका करने अथवा डरने का कोई अवसर उत्पन्न ही नहीं होगा और मुझे आशा है कि यह बहुत शीघ्र ही होगा। फिर भी, श्रीमान्, मुझे आश्चर्य है कि इस अनुच्छेद को इतना अपूर्ण क्यों रहने दिया गया है, क्योंकि इसमें केवल शैक्षिक संस्थाओं का ही ज़िक्र किया गया है? शैक्षिक संस्थाओं का कदाचित् इसलिये ज़िक्र किया गया है, क्योंकि जनमत के अनुसार ये ही ऐसे स्थान हैं जहां कि धार्मिक शिक्षा दी जाती है। पर मैं यह बता सकता हूं, ऐसे अन्य स्थान अथवा संस्थायें हैं, जो राज्य द्वारा पूर्णत: संधारित है और जिनका आधुनिक काल में धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक प्रचार के साधन के रूप में बड़ी प्रभावशाली रीति से प्रयोग हो सकता है। इस प्रकार के साधन का एक उदाहरण रेडियो है। हम सब यह जानते हैं कि प्रतिदिन धार्मिक प्रचार करने के हेतु मंच के रूप में इसका कितना प्रभाववर्त्ती प्रयोग किया जा सकता है। मैं चाहता हूं कि यह अनुच्छेद अपने तर्क की दृष्टि से पूर्ण हो और इस अनुच्छेद को पूर्ण बना दिया जाये और समस्त राज्य की संस्थाओं में धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक प्रचार बन्द किया जाये। अन्यथा मुझे तो यह व्यर्थ प्रतीत होता है कि आप एक संस्था में तो साम्प्रदायिक अथवा धार्मिक प्रचार को बन्द करें और अन्य कार्य-क्षेत्रों में उसे पूर्ण रूप में होने दें। उदाहरण के रूप में सेना को ही ले लीजिये। वहां धार्मिक तथा साम्प्रदायिक प्रचार आसानी से किया

[सरदार भूपेन्द्रसिंह मान]

जा सकता है। मैं चाहता हूं कि केवल शैक्षिक संस्थाओं में ही नहीं, वरन् राज्य द्वारा संधारित समस्त संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा शीघ्र ही बन्द कर दी जायें।

*उपाध्यक्ष: संशोधन संख्या 645 जो डॉक्टर अम्बेडकर के नाम से है।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में से 'by the State' (राज्य द्वारा) शब्द निकाल दिये जायें।"

इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि वह शंका, उत्पन्न होने की सम्भावना का निराकरण करे। मसौदे में जिस रूप में "राज्य द्वारा" शब्द रखे गये हैं, यदि उनको उसी रूप में रहने दिया गया तो यह अर्थ लगाया जा सकता है कि यह अनुच्छेद राज्य के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने का अधिकार देता है। इस अनुच्छेद में निहित सिद्धान्त यह है कि राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: संधारित किसी संस्था का उपयोग धार्मिक शिक्षा के प्रयोजन हेतु नहीं होगा, चाहे धार्मिक शिक्षा राज्य द्वारा दी जाये अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दी जाये।

*श्री तजम्मुल हुसैन: उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में से 'by the State' (राज्य द्वारा) शब्द और 'wholly maintained out of State funds' (राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: संधारित) शब्द निकाल दिये जायें।"

इस अनुच्छेद का खण्ड (1) इस प्रकार पढ़ा जाता है:

"No religious instruction shall be provided by the State in any educational institution wholly maintained out of State funds."

(राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: संधारित किसी शैक्षिक संस्था में राज्य द्वारा, कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी।)

इसका यह अर्थ हुआ कि किसी शैक्षिक संस्था में जो राज्य-प्रणीवि से अंशतः संधारित है अथवा उन संस्थाओं में जो राज्य-प्रणीवि से किसी रूप में भी संधारित नहीं हैं, धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है। फल यह होगा कि समस्त गैर-सरकारी तथा सहायता प्राप्त स्कूल, कालेज, पाठशालायें और मकतब लड़के-लड़कियों को धार्मिक शिक्षा देंगे। मैं निवेदन करता हूं कि असाम्प्रदायिक राज्य में ऐसा नहीं होने देना चाहिये। इस विषय पर पूर्व वक्ताओं द्वारा बहुत कुछ कहा जा चुका है और मैं उसका विवरण नहीं देना चाहता हूं। मैं केवल यह बात कहना चाहता हूं कि यदि आप नवयुवक तथा नवयुवतियों को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने देना चाहते हैं, तो भारत को असाम्प्रदायिक राज्य कहने से क्या लाभ? यदि माता-पिता अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा देना चाहते हैं, तो इस अनुच्छेद द्वारा आप उनको रोकते नहीं हैं। अपने घर पर इस प्रकार की शिक्षा देने के लिये वह स्वतन्त्र हैं और कोई व्यक्ति इसमें आपत्ति नहीं करेगा। वास्तव में प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चे को स्कूल भेजने के पूर्व खूब शिक्षा देते हैं। सामान्यतया इस देश में यही होता है कि स्कूल भेजने के पूर्व बालक को समस्त धार्मिक शिक्षा दे दी जाती है और होना भी ऐसा ही चाहिये। माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि अपनी रीति के अनुसार अपने बच्चों को शिक्षा दें। पर सार्वजनिक संस्था द्वारा धार्मिक शिक्षा प्रदान करने का मैं विरोध करता हूं, चाहे वह राज्य-द्वारा पूर्णतः संधारित हो अथवा अंशतः।

इन शब्दों के साथ मैं अपने संशोधन को सभा के समक्ष रखता हूं।

***उपाध्यक्षः** शाब्दिक होने के कारण संशोधन संख्या 648 को पेश करने की आज्ञा नहीं दी जाती है।

(संशोधन संख्या 649, 650 और 652 पेश नहीं किये गये।)

शाब्दिक होने के कारण संशोधन संख्या 653 को पेश करने की आज्ञा नहीं दी जाती है।

संशोधन संख्या 653 प्रो. के.टी. शाह के नाम से है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) के परादिक के अन्त में निम्नलिखित अंश जोड़ दिया जाये:

'and the income from which trust or endowment is sufficient to defray the entire expenditure of such institution."

(और उस प्रन्यास अथवा नीवि की आय इस संस्था के समस्त व्यय को पूरा करने के लिए पर्याप्त है।)

संशोधित रूप में परादिक इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"Provided that nothing in this clause shall apply to an educational institution which is administered by the State but has been established under an endowment or trust which requires that religious instruction shall be imparted in such institution *and the income from which trust or endowment is sufficient to defray the entire expenditure of such institution."*

(पर इस खंड की कोई बात ऐसी शैक्षिक संस्था पर लागू न होगी जो राज्य-द्वारा प्रशासित है, परन्तु जो किसी ऐसी नीवि अथवा प्रन्यास के अधीन स्थापित हुई है, जिसके अनुसार इस संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है और उस प्रन्यास अथवा नीवि की आय इस संस्था के समस्त व्यय को पूरा करने के लिये पर्याप्त है।)

इस सम्बन्ध में मैं कुछ उन तर्कों का भी उल्लेख करूंगा जिनको अभी कुछ समय पूर्व मैंने पेश किया था और वे तर्क ये हैं कि इस परादिक का उद्देश्य अथवा अर्थ न तो यह हो सकता है और न यह होना ही चाहिये कि कोई भी व्यक्ति अध्यापन के विशेष पद के लिये, पुस्तकालय के लिये, प्रयोगशाला के लिये या कालेज या स्कूल के किसी विभाग के लिये यदि कुछ दान देता है तो उसको यह कहने का अधिकार हो कि उसकी ओर से अथवा जैसी वह चाहता है वैसी धार्मिक शिक्षा दी जाये, फिर चाहे वह प्रन्यास अथवा नीवि संस्था के सम्पूर्ण व्यय को पूरा करने के लिये पर्याप्त न हो।

इस खंड के वर्तमान परादिक से मैं समझता हूं कि किसी भी व्यक्ति के लिए यह एक साधारण बात होगी कि भवन अथवा मेज़-कुर्सियों के कुछ खर्चे को पूरा करने मात्र के लिए ही वह कोई प्रन्यास अथवा नीवि स्थापित कर दे और फिर उस संस्था के प्रबंध करने के उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाये और उसे राज्य को दे दे और इस प्रकार सरलता से महान् दानदाता की उपाधि और अमर यश प्राप्त कर ले और फिर राज्य से उस संस्था को चलाने के लिए कहे और साथ ही साथ उस सिद्धान्त का खंडन करते हुए, जिस पर इस परादिक की नींव रखी गई है, उस संस्था में धार्मिक शिक्षा देने के लिए भी निवेदन करे।

यदि यही फल हुआ तब तो जैसा कि मैंने समझा है, इस खंड के मूलभूत विचार का ही खंडन हो जायेगा और मेरे विचार से यह अनुच्छेद उपहासमय हो जायेगा। कदाचित् यह नहीं सोचा गया था कि उद्देश्य के विमुख इसका इस प्रकार अर्थ लगाया जा सकेगा। मेरा संशोधन इस खंड को स्पष्ट और साफ करने का प्रयास करता है।

ऐसा होने पर भी मुझे तो इस बात से पूर्ण संतोष नहीं होता है कि राज्य द्वारा संधारित किसी सार्वजनिक संस्था में किसी विशेष प्रकार की धार्मिक शिक्षा देने के लिए कोई गुंजायश रखी जाये, चाहे फिर उस संस्था के कुछ अथवा सम्पूर्ण व्यय की पूर्ति दानदाता के अनुदान, प्रन्यास-प्रणीवि अथवा नीवि द्वारा क्यों न होती हो।

मैं फिर कहता हूं कि इस प्रकार से तो जिस आधारभूत सिद्धान्त पर यह खण्ड आश्रित है, उसका ही खण्डन होगा। मसौदा-समिति के सभापति द्वारा अभी प्रस्तुत किये गये "राज्य-द्वारा" शब्दों के हटाने के संशोधन से तो, यदि वह स्वीकार कर लिया जाता है—और मैं समझता हूं कि वह अवश्य ही स्वीकार किया जायेगा—स्थिति और भी अधिक जटिल हो जायेगी, जब तक ऐसा न हो कि उसी समनुवर्त्ती संशोधन द्वारा प्राधिकारी स्वयं यहां से "राज्य-द्वारा" शब्द निकलवा न दें। मैं यह नहीं कह सकता कि इन शब्दों को निकाल ही दिया जायेगा। मैं तो केवल उस सम्भावना की ओर संकेत कर रहा हूं अथवा उस बात की सूचना दे रहा हूं जो, कुछ सीमा तक, मुख्य खंड और परादिक में समानता कर सकेगी।

[प्रो. के.टी. शाह]

चाहे इन शब्दों को मुख्य खण्ड से निकाला जाये या न निकाला जाये और चाहे इन शब्दों को मुख्य खण्ड में रहने दिया जाये या न रहने दिया जाये, जिस आपत्ति पर मैं ज़ोर दे रहा हूं वह तो रहेगी ही। मेरी यह धारणा है कि सर्वप्रथम तो किसी व्यक्ति को किसी शैक्षिक संस्था के लिये प्रन्यास स्थापित करने का अधिकार नहीं होना चाहिये और फिर ऐसा भी नहीं होना चाहिये कि वह उसके प्रबन्ध को राज्य को दे दे और केवल इस आधार पर कि वह उस संस्था को धन से सहायता कर रहा है या उसके आवर्त्तक व्यय को पूरा कर रहा है यह मांग करे कि उस संस्था में जैसी वह चाहे या जिसे वह माने वैसी ही धार्मिक शिक्षा दी जाये।

अब भी मेरा यह विश्वास है कि इस खण्ड के निर्माताओं का यह उद्देश्य तो हो ही नहीं सकता था। इस परादिक से इस प्रकार की अनियमितता पैदा हो सकती है अथवा ऐसा कोई अपवाद उत्पन्न हो सकता है, इसलिये जिस प्रकार अपने संशोधन द्वारा मैं इसे स्पष्ट बनाने का प्रयत्न कर रहा हूं, उसी प्रकार इसे स्पष्ट बना दिया जाये मुझे विश्वास है कि यदि कानूनी ज्ञान नहीं तो व्यावहारिक ज्ञान स्वयं इस बात को दृढ़तापूर्वक स्वीकार करेगा और यदि मेरे संशोधन के रूप को, नहीं, तो तत्त्व को तो अवश्य ही स्वीकार किया जायेगा।

(संशोधन संख्या 654, 655 और 657 पेश नहीं किये गये।)

*__उपाध्यक्षः__ संशोधन संख्या 656 को शाब्दिक होने के कारण पेश करने की आज्ञा नहीं मिली।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं :

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (2) में से 'recognised by the State or' (राज्याभिज्ञात अथवा) शब्दों को निकाल दिया जाये।"

अनुच्छेद 22 और 23 की कुछ अस्पष्ट बातों को स्पष्ट कराने के विचार से मैं इस संशोधन को पेश कर रहा हूं। मुझे आशा है कि मेरे विद्वान् मित्र

डॉ. अम्बेडकर अपने उत्तर में सर्वाधिक बाधा-शून्य प्रणाली को अपनाते हुए केवल यही नहीं कहेंगे कि "मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं", बल्कि तर्क प्रस्तुत करते हुये यह भी बतायेंगे कि क्यों वे मेरे संशोधन का विरोध करते हैं अथवा उसको अस्वीकार करते हैं। और मुझे यह भी आशा है कि इस अनुच्छेद की अस्पष्ट बातों पर कुछ प्रकाश डालने का वे भरसक प्रयत्न करेंगे। यदि हम सावधानीपूर्वक इस अनुच्छेद के विभिन्न खण्डों की जांच करें और आगे आने वाले अनुच्छेदों पर भी दृष्टि डालें तो हमें यह विदित होगा कि उनमें कुछ असंगत बातें हैं अथवा कम से कम एक बात तो असंगत है ही। अनुच्छेद 22 का खण्ड (1) राज्य-प्राणीवि से पूर्णत: संधारित संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाता है। और, परादिक से उन संस्थाओं के लिये बचत कर दी गई है, जो किसी नीवि अथवा प्रन्यास के अधीन स्थापित की गयी हैं और राज्य-द्वारा प्रशासित हैं—अर्थात् जिन संस्थाओं को नीवि अथवा प्रन्यास के अधीन स्थापित किया गया है और जिनमें प्रन्यास की शर्तों के अनुसार धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है, उन संस्थाओं में राज्य के प्रशासन करने पर भी इस परादिक के अनुसार धार्मिक शिक्षा देने पर कोई आपत्ति नहीं होगी। खण्ड (2) यह निर्धारित करता है कि राज्याभिज्ञात अथवा राज्य-प्रणीवि से सहायता पाने वाली शैक्षिक संस्था में जाने वाले किसी व्यक्ति के लिये धार्मिक शिक्षा में भाग लेना आवश्यक नहीं होगा। इसका यह अर्थ हुआ कि धार्मिक शिक्षा अनिवार्य नहीं होगी। मुझे खण्ड 23 के उप-खण्ड (3) (क) को लेना होगा, जिसमें यह कहा गया है कि धर्म, समुदाय, अथवा भाषा पर आधृत सब अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शैक्षिक संस्थाओं के स्थापन और प्रशासन का अधिकार होगा। तो क्या यह विचार है कि जिन संस्थाओं का अनुवर्त्ती खण्ड में उल्लेख किया गया है और जिनको अपनी रुचि के अनुसार अल्पसंख्यक वर्ग, संचालित और प्रशासित कर सकते हैं उन संस्थाओं में अल्पसंख्यक वर्गों को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की आज्ञा नहीं दी जायेगी? अल्पसंख्यक वर्गों द्वारा स्थापित ऐसी संस्थायें हो सकती हैं, जिनमें वे विद्यार्थियों से धार्मिक कक्षाओं में उपस्थित होने का आग्रह करें, तथा अन्य किसी

[श्री एच.वी. कामत]

रूप में वे संस्थायें आपत्तिजनक न हों। मेरे विचार में उनसे राज्य की स्वीकृति वापस लेना कोई ठीक या कारगर बात न होगी। मैं यह समझ सकता हूं कि उनको राज्य आर्थिक सहायता न दे, किन्तु मैं यह कभी नहीं समझ सकता कि अल्पसंख्यक वर्गों द्वारा स्थापित संस्थाओं का, जिनमें वे धार्मिक कक्षाओं में अनिवार्य उपस्थिति पर आग्रह करते हैं, राज्य स्वीकृति न दे। मैं अनुभव करता हूं कि राज्य द्वारा इस प्रकार का हस्तक्षेप अन्यायपूर्ण तथा अनावश्यक है। इसके अतिरिक्त इस बात से आगे के अनुच्छेद का किसी हद तक विरोध होता है। यदि अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शैक्षिक संस्थाओं के स्थापन और प्रशासन का अधिकार है तो क्या माननीय डॉ. अम्बेडकर का यह विचार है कि राज्य यह कहे कि "आप संस्थायें खोल सकते हैं, परन्तु यदि आप हमारी स्वीकृति चाहते हैं तो आप वहां धार्मिक शिक्षा न दें।" यह समझना सचमुच मेरी बुद्धि से परे है कि अनुच्छेद 22 और 23 की इन दो बातों में आप किस प्रकार साम्य उपस्थित कर सकते हैं? जैसा कि मैं कह चुका हूं अल्पसंख्यक वर्ग वाले बच्चों के लिये ऐसा स्कूल खोल सकते हैं और उस स्कूल में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य कर सकते हैं। यदि आप उस संस्था को स्वीकृति नहीं देते तो वह स्कूल कभी भी नहीं चल सकेगा और उसमें छात्र नहीं जायेंगे। इसके अतिरिक्त हमने अल्पसंख्यक वर्गों को कुछ अधिकारों की प्रत्याभूति दी है और यह हो सकता है कि ईसाइयों के स्कूल में वे बाइबिल पढ़ायें और मुसलमानों के स्कूल में कुरान पढ़ाये। यदि ईसाई और मुसलमान अल्पसंख्यक-वर्ग अपनी रुचि तथा रीति के अनुसार उन संस्थाओं का प्रशासन कर सकते हैं, तो सुझाव देने की आशा है कि राज्य उन संस्थाओं को स्वीकृति न दे? श्रीमान्, यदि आप ऐसे मार्ग का अनुसरण करेंगे तब तो मेरे विचार से अपने देश के अल्संख्यक-वर्गो को जो वचन हमने दिया है उसका यथार्थ रूप में पालन न होगा। इसलिये अल्पसंख्यक-वर्गों द्वारा संधारित, संचालित और प्रशासित संस्थाओं में अपने ही सम्प्रदाय के छात्रों के लिये यदि धार्मिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाये, तो मुझे ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता जिसके आधार पर राज्य उनको स्वीकृति न दे जब कि अपनी रुचि के अनुसार स्कूल स्थापित करने की आप उनको आज्ञा देते हैं, तो यह बात असंगत है कि आप केवल इस आधार पर उनको स्वीकृति न दें। मैं आशा करता हूं कि इस असंगत बात का निराकरण करने के लिये कुछ न कुछ किया जायेगा।

*__श्री जसपतराय कपूर:__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खंड (3) को निकाल दिया जाये।"

इसके पक्ष में मेरे पास चार कारण हैं। सर्वप्रथम कारण यह है कि इस खंड से अनुच्छेद 22 के खंड (1) का विरोध होता है, जो इस प्रकार पढ़ा जाता है–"राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: संधारित किसी शैक्षिक संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी।" मैं खंड (1) को उस रूप में पढ़ रहा हूं जो रूप उसका डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन के किये जाने के पश्चात् हो जायेगा। अत: जब कि खंड (1) यह निर्धारित करता है कि राज्य-द्वारा पूर्णत: संधारित किसी शैक्षिक संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी, तो इसके साथ-साथ खंड (3) में यह दिया गया है कि धार्मिक शिक्षा दैनिक कार्यक्रम के अतिरिक्त अन्य समय में दी जा सकती है। अत: यह स्पष्ट है कि ये दोनों खण्ड परस्पर विरोधी हैं। यदि खण्ड (1) रखा जाता है तो खण्ड (3) को निकाल देना चाहिये। खण्ड (1) के समक्ष खण्ड (3) नहीं टिक सकता है।

दूसरा कारण यह है कि खण्ड (3) के रखने से संभव है कि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में परस्पर विरोध हो जाये, क्योंकि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय अपने छात्रों को किसी भी संस्था में, उसी समय और उसी के भवन में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के अधिकार की मांग रख सकते हैं। नि:सन्देह इससे बहुत विरोध बढ़ जायेगा। धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के लिये दैनिक कार्यक्रम के बाहर सुविधाजनक समय बहुत ही समिति है और उसी समय तथा उसी भवन में अनेकों धार्मिक सम्प्रदाय अपने छात्रों को धार्मिक शिक्षा देना चाहेंगे। इससे शैक्षिक संस्था के मुख्याध्यापक की स्थिति बड़ी ही संकटमय हो जायेगी। वह इस दुविधा में पड़ जायेगा कि किसे आज्ञा दे और किसे न दे। यदि किसी विशेष सम्प्रदाय को आज्ञा नहीं दी जायेगी तो उसको इस बात से बहुत दु:ख होगा और इस सम्प्रदाय को जो मूलाधिकार दिया गया है। सम्भव है कि उसे प्रयोग करने के लिये वह बलपूर्वक उस संस्था में घुस भी पड़े। इससे साम्प्रदायिक तथा धार्मिक विप्लव हो सकते हैं। इस खण्ड का रखना सांघातिक संभावनाओं से परिपूर्ण है, इसलिये इसे निकाल देना चाहिये।

[श्री जसपतराय कपूर]

तीसरा कारण यह है कि साम्प्रदायिक संस्था के प्रबन्धकर्त्ता इस बात को पसन्द न करें कि उस संस्था में स्वयं उनके धर्म की शिक्षा के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म की शिक्षा दी जाये। एक मुस्लिम स्कूल, जो किसी मस्जिद के हाते में हो, यह कभी नहीं चाहेगा कि उसमें हिन्दुओं को वैदिक धर्म की शिक्षा दी जाये। इसी प्रकार आर्य-समाजियों द्वारा संचालित कोई शैक्षिक संस्था अपने भवन में कुरान की धार्मिक शिक्षा देना कभी नहीं चाहेगी। इस आधार पर भी इस खण्ड को निकाल देना चाहिये।

चौथा कारण यह है कि खण्ड (2) को दृष्टिगत रखते हुये यह खण्ड पूर्णतया अनावश्यक है। खण्ड (2) इस बात की व्यवस्था करता ही है कि किसी शैक्षिक संस्था के प्रबन्धन द्वारा यदि छात्र सहमत हों तो और यदि वे अल्पवयस्क हैं, तो उनके संरक्षक सहमत हों तो धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है। ऐसी शिक्षा केवल कार्यकाल में ही नहीं, वरन कार्यकाल के बाहर भी दी जा सकती है। अतः खण्ड (2) को दृष्टि में रखते हुये यह अनावश्यक है। इन कारणों के आधार पर मैं निवेदन करता हूं कि खण्ड (3) निकाल दिया जाये।

*__श्री मोहम्मद इस्माइल साहबः__ उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूंः

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (3) में 'providing' (देने) शब्द के स्थान में 'being permitted to provid' (देने के लिये अनुमति दिये जाने में) शब्द रखे जायें, और 'educational institution' (शैक्षिक संस्था के कार्यकाल), शब्दों के पश्चात् 'in, or' (में अथवा उस) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

अनुच्छेद 22 का खण्ड (3) मुख्यतया खण्ड (1) में विचारी हुई संस्थाओं का उल्लेख करता है। इसलिये मैं सोचता हूं कि 'देने' शब्द के स्थान में 'देने के लिये अनुमति दिये जाने में' शब्द रखना अधिक उपयुक्त होगा। मैं यह इस लिये कहता हूं कि राज्य की संस्थायें होने के कारण स्कूलों में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की कोई व्यवस्था करने के लिये अनुमति प्राप्त करनी चाहिये और देनी चाहिये। कोई धार्मिक सम्प्रदाय, अथवा समुदाय सीधे यह नहीं कह सकता कि "हम अमुक-अमुक स्कूलों में धार्मिक शिक्षा दे रहे हैं।" ऐसा नहीं हो सकता। अतः उसको अधिक बोधगम्य अथवा तर्क-सम्मत बनाने के लिये मैं चाहता हूं कि 'देने' के स्थान में 'देने के लिये अनुमति दिये जाने में' शब्द रखे जायें।

तत्पश्चात्, श्रीमान, मैं 'शैक्षिक संस्था के कार्यकाल' शब्दों के पश्चात् 'में अथवा उस' शब्दों को प्रविष्ट करना चाहता हूं। इन शब्दों के प्रविष्ट करने से यह खण्ड इस प्रकार पढ़ा जायगा:

"Nothing in this article shall prevent any community or denomination from being permitted to provide religious instruction for pupils of that community or denomination in an educational institution in or outside its working hours."

(इस अनुच्छेद की किसी बात से, किसी समुदाय अथवा सम्प्रदाय के लिये, अपने समुदाय अथवा सम्प्रदाय के विद्यार्थियों को शैक्षिक संस्था के कार्यकाल में अथवा उसके पश्चात् धार्मिक शिक्षा देने के लिये अनुमति लिये जाने में रुकावट न होगी।)

मैं चाहता हूं कि संस्था के कार्यकाल में अथवा कार्यकाल के पश्चात् भी किसी समुदाय को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की अनुमति होनी चाहिये। प्रत्यक्ष है कि केवल उस संस्था के अधिकारियों की अनुमति से ही इस प्रकार की व्यवस्था की जा सकेगी। अत: यदि वे अधिकारी कार्यकाल के अन्तर्गत धार्मिक शिक्षा देना व्यवहार्य समझते हैं, तो उन्हें उनके इस विचार को हानिकर न मानना चाहिये। समस्त छात्रों के हित में ऐसी व्यवस्था करनी ही चाहिये। जैसा कि मैं कह चुका हूं, इस खंड (3) का खंड (1) से सम्बन्ध है जो राज्य की संस्थाओं के सम्बन्ध में है। राज्य की संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा का देना यदि पूर्णतया तथा सदा के लिए निषिद्ध कर दिया जाये तो उसमें क्या आपत्ति की जा सकती है? स्थिति यह है : शीघ्र ही समस्त प्राथमिक पाठशालायें राज्य-संस्थायें हो जायेंगी और यदि राज्य-संस्थाओं में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी तो अवस्था यह होगी कि 14 अथवा 15 वर्ष की आयु तक लड़के तथा लड़कियों को धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर न मिलेगा। यह कहना कि घर पर अथवा स्कूल के कार्यकाल के पश्चात् धार्मिक शिक्षा दी जाये, एक अव्यावहारिक बात है। शिक्षा-विशेषज्ञ तुरन्त ही इस बात से सहमत हो जायेंगे कि स्कूल के कार्यकाल के पश्चात् धार्मिक शिक्षा देना विद्यार्थियों पर ऐसा भार डालना होगा, जिसे कोमल वय के विद्यार्थियों पर नहीं डालना चाहिये। इसके अतिरिक्त हम इस बात का भी अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि कार्यकाल के पश्चात् कैसी धार्मिक शिक्षा दी जायेगी। अत:, श्रीमान्,

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

धार्मिक शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण विषय के प्रति हमें विमाता का सा व्यवहार न करना चाहिये। यह आम कहावत है कि धर्म के कारण विप्लव होते हैं। जैसा कि मैं अनेकों बार कह चुका हूं धर्म तो झगड़े की जड़ है ही नहीं। झगड़े की जड़ तो धर्म का मिथ्या ज्ञान है। बात यह है कि विद्यार्थियों को यह समझाना चाहिये कि धर्म वास्तव में क्या वस्तु है और प्रत्यक्ष है कि इस ज्ञान के उपार्जन के लिये, यह जानने के लिये कि धर्म का सच्चा स्वरूप क्या है, हमें उनको नगर के बाज़ारों और ग्रामों की गलियों में न छोड़ देना चाहिये। यदि धार्मिक शिक्षा विद्यार्थी और राज्य दोनों के हित में है, तो आवश्यक है कि सार्वजनिक शैक्षिक संस्थाओं में वह प्रदान की जानी चाहिये, जिससे कि प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने धर्म के सर्वोत्तम स्वरूप को प्रस्तुत करने का भरसक प्रयत्न करें। श्रीमान्, यह तभी हो सकता है कि जब कि राज्य-द्वारा अपनाई हुई सार्वजनिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की आज्ञा हो, जिनमें लोग परस्पर प्रतियोगी के रूप में संसार को अपने-अपने धर्म का सर्वोत्तम स्वरूप प्रदर्शन कराने का प्रयत्न करें और इस प्रकार अवांछनीय ईर्ष्या स्पर्धा, कलह और विद्वेष को निर्मूल कर दें।

श्रीमान्, द्वितीय विश्व-युद्ध ने लोगों को पुन: धर्म की ओर उन्मुख कर दिया है। यूरोप के अनेकों लेखक कहते हैं कि चूंकि लोग धर्म से विमुख हो गये थे, धर्म से घृणा करते थे और अपने कोमल वयस्क बच्चों को धार्मिक शिक्षा प्राप्त नहीं करने देते थे, इसीलिये यह संकट आया। अत: बहुत से राजनैतिक लेखक इस बात पर जोर देते हैं कि राज्य के स्कूलों में अब धार्मिक शिक्षा दी जाये। इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि यूरोप के देशों के अनेकों विधानों ने अपने-अपने देशों में अनिवार्य रूप से धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की है। अत: मेरा निवेदन केवल यही नहीं है कि धार्मिक शिक्षा हानिकारक नहीं है, वरन् यह भी है कि वह इतनी आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यार्थी को, उचित आयु होने पर, वह दी जानी ही चाहिये। यह बात केवल तभी हो सकती है जब कि विद्यार्थी प्राथमिक पाठशाला में पढ़ता हो। अत: जब कि समस्त प्राथमिक पाठशालायें राज्य की पाठशालायें हो रही हैं, तो राज्य को पूर्णतया धार्मिक शिक्षा बन्द नहीं करनी चाहिये। जैसा कि मैंने किसी पूर्ववर्त्ती संशोधन में कहा है, इसे संसद् पर छोड़ दिया जाये। कुछ सम्प्रदायों के लिये कुछ व्यावहारिक कठिनाइयां हो सकती हैं, परन्तु इन कठिनाइयों को संसद् पर छोड़ देना चाहिये कि वह परिस्थितियों के अनुसार उनका निराकरण करे। क्योंकि कुछ लोगों को कठिनाइयां

होंगी, इस आधार पर अन्य सम्प्रदायों को अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा प्रदान कराने के अधिकार से वंचित नहीं रखना चाहिये। मैं फिर इस बात पर ज़ोर देना चाहता हूं कि बच्चों के चरित्र को धार्मिक आधार पर निर्माण करना राष्ट्र के लिये हितकारी है। समाज तथा राज्य की दृढ़ता के लिये इसी बात की आवश्यकता है कि उनका आधार शील हो और शील से वे पोषित हों और यह आधार धर्म द्वारा ही निर्माण किया जा सकता है। संसार अभी तक धर्म के स्थान में किसी अन्य वस्तु की खोज करने के प्रयोगों में असफल रहा है। कट्टर राजनीतिज्ञ भी अब धर्म की ओर झुक रहे हैं। जब कि समस्त विश्व धर्म की ओर झुक रहा है तब हम लोग, जो उस वर्ग के हैं जो धर्म को अपने जीवन का अविच्छेद्य अंग समझते हैं, धर्म का परित्याग कर रहे हैं। यदि हम उन समस्त कटु अनुभवों से बचना चाहते हैं जो पश्चिम को भोगने पड़े हैं, तो प्राथमिक पाठशालाओं में हमें बच्चों को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की आज्ञा दे देनी चाहिये। यदि ऐसा किया जाता है तो सब बातें ठीक होंगी और सबके लिये सुख होगा। इसीलिये मैं कहता हूं कि कम से कम धार्मिक प्रवृत्ति के सम्प्रदायों को परिस्थितियों के अनुसार हर हालत में स्कूल के कार्यकाल में अथवा उसके बाहर धार्मिक शिक्षा देने का प्रबन्ध करने की अनुमति दी जाये। इसे भावी विधान-मंडलों पर छोड़ दिया जाये।

(संशोधन संख्या 663 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 664। प्रोफेसर के.टी. शाह!

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (3) में 'outside its working hours' (शैक्षिक संस्था के कार्यकाल के पश्चात् धार्मिक शिक्षा देने में रुकावट न होगी) शब्दों के स्थान में निम्न शब्द रखे जायें:

'maintained by that community from its own funds provided that no educational institutions, nor any education or training imparted therein shall be recognised unless it provides instruction or training in courses laid down for public instruction in the regular system of education for the country and complies in all other respects with methods, standards, equipment and other requirements of the national system of education.'

[प्रो. के.टी. शाह]

(उस समुदाय द्वारा स्वयं अपनी ही प्रणीवि से संवारित शैक्षिक संस्था में शिक्षा देने में रुकावट न होगी, परन्तु कोई शैक्षिक संस्था अथवा उसमें दी हुई कोई शिक्षा अथवा प्रशिक्षा तब तक स्वीकृत नहीं की जायेगी, जब तक वह संस्था देश की नियमित शिक्षा-प्रणाली में लोक-शिक्षा के लिये निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा तथा प्रशिक्षा न दे और अन्य समस्त रूप में राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की विधि, स्तर, साधन तथा अन्य आवश्यकताओं के अनुकूल न हो।)"

श्रीमान्, इन खण्डों का समस्त समूह इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि-"सार्वजनिक शैक्षिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा न हो" और फिर जैसा कि इस समस्त अध्याय से प्रतीत होता है, उसमें ऐसे छिद्र तथा दरारें रखने का प्रयत्न किया गया है कि अंधकार में चोर के समान उसमें प्रवेश किया जा सकता है और जिस भवन के निर्माण करने का हम प्रयत्न कर रहे हैं उसके आधार तथा नींव को ढाया जा सकता है। अपवादों, छूटों और प्रतिबन्धों से जो कठिनाइयां पैदा होती हैं, यदि उन पर दृष्टि न भी डाली जाये तो भी इस अनुच्छेद की संदिग्ध वाक्य-रचना से तथा अस्पष्ट और अपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली से सारी कठिनाई पैदा होती है कि मैं निस्संकोच कह सकता हूं कि प्राय: यह असम्भव हो जाता है कि ऐसा कोई संशोधन तैयार किया जा सके, जो तत्त्वत: तथा रूपत: पूर्ण मात्रा में उद्देश्य की पूर्ति कर सके, तथा इस अनुच्छेद में निहित विचार को इतनी स्पष्टता और असंदिग्धता से व्यक्त कर सके, जितनी से कि प्रारूपक उस विचार को व्यक्त करने में समर्थ नहीं हुआ है।

पदों में संदिग्धता का मैं एक उदाहरण देता हूं, जो दुर्भाग्यवश मेरे संशोधन में भी, जिसे मैं प्रस्तुत कर रहा हूं, विद्यमान है, यद्यपि मेरे विचार से मेरे संशोधन में 'State funds' (राज्य-प्रणीवि) पद के प्रयोग में संदिग्धता नहीं है। जैसा कि मैंने समझा है, साधारण बोलचाल में और मैं तो यहां तक कहूंगा कि कानून की परिभाषा में भी 'funds' (प्रणीवि) शब्द का अर्थ आगम अथवा आवर्त्तक आय नहीं होता इस शब्द का अर्थ होता है कुछ-कुछ स्थायी राशि, संचित अथवा विद्यमान राशि, उस ऐसी राशि जिसे वकील लोग 'corpus' कहते हैं, चाहे वे इस लेटिन शब्द का लेटिन अर्थ समझते ही हों। 'आगम' इससे कुछ भिन्न है।

अब राज्यप्रणीवि से संधारित संस्थाओं से सम्बद्ध खण्ड को लीजिये। मेरे लिये यह समझना कठिन है कि किन प्रणीवियों के प्रति संकेत किया गया है, जिनसे कि संस्थाओं को संधारण करने की बात प्रारूपकों ने इस अनुच्छेद में कही है। सच तो यह है कि 'भैंस के आगे बीन बजाने' के लिये मैं उत्सुक नहीं हूं। पर मैं यह कहूंगा कि इस अनुच्छेद का अर्थ समझने के लिये मैं यह आवश्यक समझता हूं कि प्रयुक्त पद को ठीक-ठीक समझने में अपनी कठिनाइयों और कमियों को कम से कम प्रकट कर दूं और जिन लोगों ने इस विधान की रचना की है तथा इसका निर्माण किया है, उनसे अर्थ स्पष्ट करने के लिये कहूं।

मैं इस बात को गुप्त नहीं रखना चाहता हूं कि मैं इस बात के विरुद्ध हूं कि इस देश में अथवा किसी अन्य देश में सार्वजनिक शैक्षिक संस्थाओं का, धार्मिक शिक्षा देने के लिये उपयोग किया जाये, और विशेषकर इस देश में जिसमें अनेकों मत और अनेकों सम्प्रदाय हैं, ऐसी शिक्षा देना सर्वथा अनुचित है। यह सच है कि उनमें से प्रत्येक को धर्म कहा जाता है, परन्तु वे बहुधा व्यापक धर्म के मूलभूत सत्य को भूल जाते हैं और 'अपनी-अपनी ढपली तथा अपना-अपना राग' वाली कहावत चरितार्थ करते हैं जिस प्रकार से कि बाज़ार में कोई विज्ञापन करने वाला अपने माल की प्रशंसा करता है, उसी तरह से यह लोग करते हैं। यह मानते हुये भी कि कार्यकाल के पश्चात् अथवा स्कूल के सामान्य कार्यकाल के पश्चात् ऐसा हो सकता है, मेरा निवेदन है कि कम से कम इस बात का ध्यान रखा जाये कि सामान्य शिक्षा को और उस शिक्षा तथा प्रशिक्षा से सम्बन्धित भवन, शिक्षक वर्ग, स्तर, विधि इत्यादि के रूप में समस्त आवश्यकताओं को हानि पहुंचा कर ऐसा न किया जाये।

कम से कम इस खण्ड में, जिस रूप में कि यह वर्तमान है, यह किसी प्रकार स्पष्ट नहीं किया गया है कि यदि धार्मिक शिक्षा सामान्य कार्यकाल के पश्चात् दी जाती है, तो क्या वह सामान्य पाठ्यक्रम को हानि पहुंचा कर दी जायेगी या नहीं। मैं यह मानता हूं कि प्रत्येक स्कूल में धार्मिक शिक्षा दी जायेगी, चाहे वह राज्य-प्रणीवि से संधारित हो या न हो। अत: इस संशोधन में मैं इस बात पर आग्रह करता हूं कि जो कोई यह शिक्षा देना चाहता है, जो कोई भी समुदाय यह शिक्षा देना चाहता है वह, यदि आप उससे सहमत हों तो अपनी प्रणीवि से दें, परन्तु

[प्रो. के.टी. शाह]

ऐसा करने से पहले उसके लिये यह आवश्यक होगा कि वहां पूर्ण व्यय उठाने की क्षमता रखता हो और प्रयुक्त पद के पूर्ण अर्थ के अनुसार धार्मिक शिक्षा स्कूल के कार्यकाल के पश्चात् इस प्रकार से दी जाये कि उसका विनिहित सामान्य पाठ्यक्रम से, योग्यता के स्तर से, शिक्षा विधि इत्यादि से कोई विरोध न हो।

यदि आप कोई ऐसा अभिरक्षण नहीं रखते हैं, जैसा कि अपने संशोधन द्वारा रखने का मैं प्रयास कर रहा हूं, तो मेरी सम्पति से इस शिक्षा-सम्बन्धी उन सब बातों के बारे में जिनका जिक्र मैंने अभी किया है, हमको हानि उठानी पड़ेगी और संकट का सामना करना पड़ेगा। इस हानि और संकट से बचने का हमारे लिये यही उपाय है कि यदि कोई समुदाय इस बात का आग्रह करे कि यदि केवल धार्मिक शिक्षा न दी जा सके, तो कम से कम ऐसी शिक्षा को प्रधानता दी जाये तो उसे धार्मिक शिक्षा देने दीजिये। यदि वह ऐसी शिक्षा पर होने वाले व्यय को स्वयं ही बर्दाश्त करने को तैयार हों, पर राज्य ऐसी संस्था में दी गई किसी शिक्षा को तथा उस संस्था-द्वारा विद्यार्थियों के प्रयोग के लिये रखे जाने वाले शिक्षा-साधनों को तब तक ठीक न माने जब तक कि वे उस अच्छाई के योग्य नहीं हैं, जितनी कि निर्दिष्ट योग्यता प्राप्त करने के हेतु ऐसी शिक्षा के लिये सब शिक्षा-संस्थाओं के लिये निर्धारित की हुई हैं और जब तक कि वह उन सार्वजनिक प्रयोजनों की पूर्ति नहीं करती, जिनकी पूर्ति की ऐसी शिक्षा से अपेक्षा की जाती है।

मुझे उन शैक्षिक संस्थाओं का कुछ अनुभव है, जो किसी न किसी प्रकार से इन समस्त आवश्यक नियमों को अथवा उनमें से किसी एक के दायरे से निकलने की कोशिश में रहती हैं। जिन व्यक्तियों को इन संस्थाओं के निरीक्षण करने और सम्बन्ध में अधिकारियों को रिपोर्ट देने का अवसर प्राप्त हुआ है, उन्होंने यह अनुभव किया होगा कि मेरे इस कथन का क्या तात्पर्य है। और उनको यह भी याद आ जायेगा कि उन संस्थाओं से निर्धारित स्तर को कायम रखने तथा समय-समय पर यह देखने में, कि उस स्तर का निर्वाह किया जाता है, कितनी अधिक कठिनाइयां होती हैं।

जिन देशों में शिक्षा का स्तर सर्वत्र एक-सा है उनमें भी इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ कठिनाइयां होती रहती हैं। परन्तु जिन देशों में शिक्षा के आदर्शों के बारे में मत-विभेद है, अर्थात् एक तरफ तो वह विचार है कि शिक्षा असाम्प्रदायिक ढंग की हो और वृत्ति अथवा शिल्प की शिक्षा में मुख्य ध्येय केवल उसका आर्थिक लाभ ही हो और दूसरी तरफ इस बात की भी मांग है कि विशेष प्रकार की धार्मिक शिक्षा भी दी जावे तो वहां, मैं साफ शब्दों में कह देता हूं कि, एक न एक विचार—धारा दूसरी को पराजित करके खत्म कर देगी। अतः मैं यह बात अत्यन्त आवश्यक समझता हूं कि न केवल यह बन्धान हो कि वह सब रुपया जो ऐसी शिक्षा पर खर्च होता है, वही समाज देगा जो ऐसी शिक्षा दिलाना चाहता है, वरन् साथ ही यह भी इस समाज को साफ शब्दों में ज्ञात हो जाये कि यदि इस शिक्षा-संस्था में शिक्षा का स्तर, साधन, उसकी इमारत, उसका शिक्षक-वर्ग और अन्य बातें वैसी न हुईं जैसी कि राष्ट्रीय शिक्षा के लिये आवश्यक ठहराई हुई हैं और जब तक वह शिक्षा-संहिता के विनियमों का पूरा पालन नहीं करती तो उसको राज्य अपनी मान्यता प्रदान न करेगा और न उसकी उपाधियों, डिप्लोमाओं और प्रमाण-पत्रों को ऐसा न मानेगा कि जिनके आधार पर उसके विद्यार्थियों को किसी पद पर नियुक्ति के लिये योग्य माना जाये और साथ ही उस समाज को यह भी समझ लेना होगा कि इन सब बातों को पूरा करने का पूरा उत्तरदायित्व उसी पर है। यदि ऐसा हो जायेगा तो सम्भव है कि इस देश में धार्मिक शिक्षा देने में जो दोष मुझे दिखाई देते हैं उनका यदि पूर्ण निराकरण न हुआ तो उनमें कुछ कमी तो हो ही जायेगी।

(संशोधन संख्या 665 पेश नहीं किया गया।)

*__उपाध्यक्षः__ इस खण्ड पर अब सामान्य वाद-विवाद हो सकता है।

*__श्रीमती रेणुका रे__ (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, यद्यपि मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करती हूं फिर भी एक या दो ऐसी बातें हैं, जिनका मैं स्पष्टीकरण कराना चाहती हूं। प्रोफेसर के. टी. शाह ने एक ऐसा प्रश्न प्रस्तुत किया है जिसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। इस अनुच्छेद के भाग (1) में

[श्रीमती रेणुका रे]

कहा गया है कि 'राज्य-प्रणीवि से पूर्णतः' संधारित किसी शैक्षिक संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी'। भविष्य में इस अनुच्छेद के इतने अशुद्ध अर्थ लगाये जाने की सम्भावना है कि जिससे इसके मूल सिद्धान्त का ही खण्डन हो जायेगा। जैसा कि उन्होंने संकेत किया है यदि किसी सार्वजनिक पाठशाला को थोड़ा-सा धनदान कर दिया जाता है, तो यह मान लिया जा सकता है कि यह पाठशाला राज्य-प्रणीवि से पूर्णतः संधारित नहीं है, अतः उसमें उस सम्प्रदाय की धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है। मैं आशा करती हूं कि डॉ. अम्बेडकर अपने भाषण में इस बात को स्पष्ट कर देंगे, क्योंकि यह बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बात है। यदि ऐसी व्याख्या की जा सकती है तो उससे बचना आवश्यक है।

इस देश में जिसे हम धर्म कहते हैं, उसका दुरुपयोग हमने यहां देखा है और साम्प्रदायिक धर्म के नाम पर जो कुछ होता है उसका हमें कटु अनुभव है। उसके कारण हमारे देश का विभाजन और अंग भंग ही नहीं हुआ है, वरन् जो भी भयानक विपत्तियां हो सकती हैं वे सब धर्म के नाम के कारण हमें सहनी पड़ी हैं। अब जब कि हम भविष्य के लिये विधान-निर्माण कर रहे हैं तो हमें उसका निर्माण इस रीति से करना चाहिये कि हम बीती हुई बातों में न फंसें। केवल एक मात्र सच्चा मार्ग, जिसके द्वारा यह उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है, यह है कि आगे आने वाली सन्तति को इस प्रकार की शिक्षा दी जाये कि वह उन प्रवृत्तियों से प्रोत्साहित न हो, जो मानव को मानव से पृथक् तथा अलग करती हैं। इसके विपरीत उनमें यह धारणा बैठाई जाये कि साम्प्रदायिकता पर आश्रित धार्मिक वैमनस्य से मानव-धर्म कहीं श्रेष्ठ है। यदि हम ऐसा करना है तो हमें इस समय इस बात में बहुत ही सतर्क रहना चाहिये कि भविष्य के लिये जो विधान हम बना रहे हैं, उसके मूलाधिकारों में इस सम्बन्ध में कोई संदिग्धता की आशंका न रहे कि राज्य-प्रणीवि से संधारित संस्थाओं में किस प्रकार की शिक्षा दी जाय। यदि हम 'पूर्णतः' शब्द का प्रयोग करते हैं तो इससे वह गड़बड़ी जो कि अभी बताई गई है, पैदा हो सकती हैं। मैं डॉक्टर अम्बेडकर से यह जानना चाहूंगी कि या तो वे इस संशोधन को स्वीकार करें अथवा कम से कम सभा को यह आश्वासन दें कि भविष्य में इस प्रकार की व्याख्या नहीं की जा सकेगी।

मैं उनसे पुन: आग्रह करूंगी कि वे उस संशोधन को तो स्वीकार कर ही लें, जो खण्ड (3) को निकाल देने के लिये है और जिसको कि श्री जसपतराय कपूर ने पेश किया है, क्योंकि जैसा कि उन्होंने संकेत किया है, इसमें सन्देह नहीं कि यदि यह खण्ड रहने दिया गया तो इस बात की सम्भावना है कि किसी क्षेत्र में पाठशालाओं की संख्या कम हो अथवा एक ही पाठशाला हो तो विभिन्न सम्प्रदायों में इस बात पर झगड़ा हो जाये कि स्कूल के कार्यकाल के पश्चात् किस प्रकार की धार्मिक शिक्षा दी जाये। अत: बहुत अच्छा होगा कि खण्ड (3) को इस अनुच्छेद से निकाल दिया जाये।

मुझे विश्वास है कि इस सभा में उपस्थित सदस्य तथा देश के अन्य व्यक्ति मुझसे इस बात में सहमत होंगे कि यह परमावश्यक है कि भावी नागरिकों को जो शिक्षा दी जाये वह इस प्रकार की हो कि जिससे उस असाम्प्रदायिक राज्य के विचार का प्रादुर्भाव हो, जिसमें कि प्रत्येक व्यक्ति से समान व्यवहार किया जाता है और इस सम्बन्ध का जो प्रावधान हमारे विधान में रखा गया है वह सार्थक हो जाये। यह तभी हो सकता है जब कि शिक्षा जो हमारे समाज-निर्माण का मूल आधार है, नवयुवकों को इस प्रकार दी जाये कि वे उन विभेदात्मक बातों को न सीखें जो मानव को मानव से पृथक् करती हैं और यह सीखें कि मनुष्य मात्र की अन्तरतम एकता अधिक सारभूत है तथा वही धर्म का अधिक दृढ़ आधार है और वे इसी पर अटल रहें।

*__श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले__ (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, हम लोग इस देश में असाम्प्रदायिक राज्य की स्थापना करने के महत्त्वपूर्ण कार्य में रत हैं। इस कार्य के सम्पन्न करने के लिये अनुच्छेद 22 के खण्ड 2 का विशेष महत्त्व है, अत: मैं प्रसन्न हूं कि यह हमारी स्वीकृति के लिये हमारे सामने रखा गया है।

श्रीमान्, सम्भवत: इस सर्वसत्ताधारी परिषद् को यह बात ज्ञात है कि कुछ संस्थाओं ने इस बारे में दूसरे मार्ग को ही अपनाया था। उन्हें सरकार से सहायता मिलती थी और उसके बल पर वे जन-साधारण को शिक्षा देने के बहाने जनता के कुछ विभागों के मन पर अपना प्रभाव जमा लेती थीं। फल इसका यह होता था और हुआ कि कुछ अभागी जातियों के बहुत से लोगों ने इस प्रभाव के कारण

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

अपने पूर्वजों के धर्म को छोड़ कर दूसरा धर्म स्वीकार कर लिया। किन्तु इस अनुच्छेद से अब यह बात साफ हो जायेगी कि कोई भी संस्था, जिसे राज्य से सहायता मिलती है, धार्मिक शिक्षा न दे सकेगी। स्वभावतः इस अनुच्छेद से उन अभागी जातियों का भला होगा जो अब तक इस प्रकार के धार्मिक प्रचार का शिकार हुई हैं।

श्रीमान्, इस अनुच्छेद में यह और भी कहा गया है कि अवयस्कों को, जब तक कि उनके माता-पिता सहमति न दें, धार्मिक शिक्षा न दी जाये अथवा धार्मिक उपासना में उन्हें उपस्थित होने को न कहा जाये। श्रीमान्, मेरा विचार है कि हो सकता है कि माता-पिता के लिये सर्वदा यह सम्भव न हो कि वे इस बारे में अपनी स्वतंत्र सहमति दे सकें। देहाती क्षेत्रों और नगरों के आस-पास वाली संस्थायें इस विषय में माता-पिताओं की सच्ची सहमति प्राप्त नहीं कर सकेंगी। यह देखने का कर्त्तव्य-भार कि जो सहमति दी गई है, वह ठीक और सच्ची है या नहीं, स्थानीय अधिकारियों पर पड़ेगा। उन्हें इस बात का ठीक पता चलाना होगा कि सहमति सचमुच उन्होंने दी है या नहीं, साथ ही इन स्थानीय प्राधिकारियों को प्रबन्ध करना होगा कि विशिष्ट सम्प्रदाय की संस्था में पढ़ने वाले विद्यार्थियों अथवा छात्रों से धर्म परिवर्तन न कराया जाये। मेरा यह साग्रह निवेदन है कि स्थानीय सरकारें इस बात की पूरी देखभाल रखें कि सहमति के बारे में जो प्रावधान किया जा रहा है उसका किसी रूप में उल्लंघन न हो और मुझे आशा है कि वे ऐसा करेंगी। विधान के अनुच्छेद 22 के प्रावधानों का मैं हृदय से समर्थन करता हूं।

***श्री वी.एस. सरवते** [संयुक्त राज्य ग्वालियर-इन्दौर-मालवा (मध्य भारत)]: उपाध्यक्ष महोदय, खण्ड (3) को छोड़ कर, जिस रूप में यह अनुच्छेद है मैं इसका समर्थन करता हूं। जैसा कि मैं समझता हूं अनुच्छेद 20, 21 और 22 को साथ-साथ पढ़ा जाना चाहिये। उनसे कुछ बातें उत्पन्न होती हैं। पहली बात यह है कि राज्य असाम्प्रदायिक है और अपनी पाठशालाओं में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं देगा। अनुच्छेद 22 का खंड (1) यह भी निर्धारित करता है कि राज्य उन पाठशालाओं में भी कोई धार्मिक शिक्षा नहीं देगा जो राज्य-प्रणीवि

से पूर्णतः संधारित हैं और इन पाठशालाओं को धार्मिक शिक्षा देने की आज्ञा नहीं दी जायेगी, यह पहली बात है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि राज्य धर्म पर प्रतिबन्ध लगाता है या धर्म से घृणा करता है, उसकी नीति इस सम्बन्ध में पूर्णतया तटस्थ है। अनुच्छेद 20 किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय को अपने स्कूल खोलने की आज्ञा देता है। अनुच्छेद 21 के पढ़ने पर मैं उसका यह मतलब समझता हूं कि यदि कोई विशिष्ट सम्प्रदाय धार्मिक शिक्षा देने के हेतु अपने ऊपर कुछ कर लगाना चाहता है तो सरकार उस कर के वसूल करने में उसकी सहायता करेगी। अनुच्छेद 21 से यह होगा कि राज्य किसी व्यक्ति को इस प्रकार का कर देने के लिये बाध्य नहीं करेगा। परन्तु यदि वे सम्प्रदाय धार्मिक शिक्षा देने के हेतु किसी विशेष कर के देने के लिये सहमत हैं तो राज्य उस कर को वसूल करेगा और सम्प्रदाय को दे देगा। 'पूर्णतः' शब्द से मुझे यह प्रतीत होता है, यदि राज्य किसी ऐसी पाठशाला को अंशतः सहायता देना चाहता है जिसमें धार्मिक शिक्षा दी जा रही है तो वह ऐसा कर सकता है और मेरे विचार से यह ठीक है। यदि कोई सम्प्रदाय एक पाठशाला चलाता है और उसमें विशिष्ट धार्मिक शिक्षा दी जाती है और यदि वह राज्य से सहायता प्राप्त करने के योग्य है तो राज्य को स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वह उसकी सहायता कर सके। अतः 'पूर्णतः' शब्द आवश्यक है और मैं उस संशोधन का विरोध करता हूं जो अथवा 'अंशतः' शब्द प्रविष्ट करने के लिये पेश किया गया है। जो कुछ अतीत काल में हुआ उससे किसी को भयभीत नहीं होना चाहिये। मैं जानता हूं और मैं ऐसे स्कूल और कालेजों में पढ़ा हूं, जहां कोई न कोई धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। जो शिक्षायें मुझे वहां मिलीं मैं उनका कृतज्ञ हूं। हां, कुछ बातें आपत्तिजनक भी थीं। एक शैक्षिक संस्था में धार्मिक शिक्षा पहले घंटे में दी जाती थी और यदि हम उस घंटे में उपस्थित नहीं रहते थे तो शेष सभी घंटों के लिये हमें अनुपस्थित दर्ज कर दिया जाता था। एक दूसरे कालेज में जिसमें मैंने शिक्षा पाई, यह आवश्यक था कि हम धार्मिक उपासना में उपस्थित हों और यदि हम उपस्थित न हुये तो हम पर कुछ जुर्माना किया जाता था। ये आपत्तिजनक बातें हैं और इनको दूर करना है। ये खण्ड (2) से दूर हो जाती हैं। इसके आधार पर किसी व्यक्ति को धार्मिक उपासना में अथवा उन कक्षाओं में, जिनमें धार्मिक शिक्षा दी जाती है, उपस्थित होना आवश्यक न होगा, किन्तु साथ ही यह राज्य को ऐसी संस्थाओं की सहायता करने से नहीं रोकता है। अभिप्राय

[श्री वी.एस. सरवते]

केवल यही है कि किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध ऐसी शिक्षा प्राप्त करने अथवा ऐसी धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिये बाध्य तथा विवश नहीं किया जायेगा। मेरे विचार से यह बड़ा कल्याणकारी प्रावधान है और राज्य को ऐसी संस्थाओं की सहायता करने की जो अनुमति दी गई है वह भी आवश्यक है, अन्यथा मेरा विश्वास है कि देश की कुछ अच्छी संस्थाओं को हानि होगी।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन:** उपाध्यक्ष महोदय, मेरी सम्मति में खंड (3) को छोड़ कर अनुच्छेद 22 के अन्य प्रावधान बहुत कल्याणकारी हैं और मैं सचमुच यह नहीं समझ पाता हूं कि मद्रास के मि. मोहम्मद इस्माइल ने इन प्रावधानों का क्यों विरोध किया। मेरी सम्मति में वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार अल्पसंख्यक वर्गों के लिये यह बहुत अच्छा होगा कि वे पाठशालाओं में धार्मिक वाद-प्रतिवाद, धार्मिक विरोध और धर्म सम्बन्धी निश्चित मत सिखाना बन्द कर दें। हम यह जानते हैं और कुछ वक्ताओं ने उस दिन इस सत्य की ओर संकेत भी किया था कि स्कूलों में लोगों पर अनुचित प्रभाव डाल कर या धन का लोभ दिखा कर धर्म-परिवर्तन करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता था। असाम्प्रदायिक राज्य में धर्म प्रत्येक व्यक्ति का अपना निजी मामला होता है। मेरा विनम्र निवेदन है कि ऐसे राज्य में सरकार या राज्य द्वारा पूर्णत: प्रबन्धित अथवा पूर्णतया सहायता पाने वाली शैक्षिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जानी चाहिये। श्रीमान्, यह कहा जाता है कि जब तक राज्य से आर्थिक सहायता पाने वाली पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती है, तब तक अल्पसंख्यक वर्ग अपने धर्म की शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते। मेरा निवेदन यह है कि यदि कोई सम्प्रदाय यह चाहता है कि उसके बच्चों को धार्मिक शिक्षा दी जाये तो यह उसका ही कर्त्तव्य है कि वह अपने बच्चों को अपनी पाठशालाओं या स्कूलों में पढ़ाये। मेरी सम्मति में प्रो. शाह द्वारा पेश किया गया संशोधन अभी स्वीकार नहीं किया जा सकता। उनका संशोधन यह है कि राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: अथवा अंशत: संधारित किसी शैक्षिक संस्था में, राज्य द्वारा कोई धार्मिक शिक्षा न दी जाये। वर्तमान परिस्थिति में अलीगढ़ विश्वविद्यालय है, बनारस विश्वविद्यालय है तथा और भी अनेकों ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित कालेज है, जिनको सरकार सहायता देती है। यदि आज उनका संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो तुरन्त ही अनेकों संस्थायें बन्द हो जायंगी।

हमें बड़ी सावधानी से आगे बढ़ना चाहिये। इस बात के लिये खण्ड (2) की व्यवस्था बड़ी कल्याणकर है। यह भी कहा गया है कि खण्ड (1) में से 'शैक्षिक' शब्द को निकाल दिया जाये। यह कहा गया है कि किसी विशेष धर्म के सिखाने या प्रचार करने के लिये रेडियो का उपयोग किया जा सकता है। हमारा एक असाम्प्रदायिक राज्य है और इस बात की घोषणा पूरी तरह से कर दी गई है। फिर भी यदि रेडियो द्वारा एक असाम्प्रदायिक राज्य किसी विशेष धर्म का प्रचार करना चाहता है, तो वह राज्य असाम्प्रदायिक कहे जाने का मुस्तहक न होगा। मेरी सम्मति में यह प्रश्न प्रशासन-सम्बन्धी नीति से अधिक सम्बन्धित है और खण्ड (1) में से 'शैक्षिक' शब्द को निकालने की आवश्यकता नहीं है।

श्रीमान्, यह कहा गया है कि धार्मिक शिक्षा घर पर दी जाये। मैं इसका भी विरोध करता हूं। सम्प्रदायों द्वारा संचालित और सरकारी सहायता पाने वाली पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है और मि. तजम्मुल हुसैन का यह संशोधन स्वीकार नहीं किया जा सकता कि धार्मिक शिक्षा घर पर दी जाये। प्रत्यक्ष है कि उस स्थिति में जब कि माता-पिता नास्तिक हैं—उदाहरणार्थ मि. तजम्मुल हुसैन किसी अन्य संशोधन द्वारा यह मांग रखते हैं कि लोगों का कोई नाम न हो और उनकी कोई विशिष्ट पोशाक न हो—तो उन घरों पर कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। और यदि लोगों को नाम द्वारा नहीं जाना जाये, वरन् संख्या द्वारा जाना जाये तब तो उनको धार्मिक शिक्षा देना बड़ा ही कठिन हो जायेगा। अत: मेरा यह निवेदन है कि वर्तमान रूप में अनुच्छेद 22 अल्पसंख्यक वर्गों के लिए हानिकर अथवा घातक नहीं है।

किन्तु मेरी आपत्ति तो खंड (3) के बारे में है। जो कुछ खंड (1) और (2) द्वारा दिया गया है, वह खंड (3) द्वारा छीन लिया गया है। उसमें कहा गया है:

"इस अनुच्छेद की किसी बात से, किसी समुदाय अथवा सम्प्रदाय के लिए, अपने समुदाय अथवा सम्प्रदाय के विद्यार्थियों को शैक्षिक संस्था के कार्यकाल के पश्चात् धार्मिक शिक्षा देने में रुकावट न होगी।"

[काज़ी सैयद करीमुद्दीन]

पर ऐसी संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा देने का उत्तरदायित्व किस पर होगा? यदि कोई बाहरी एजेन्सी लड़कों को धार्मिक शिक्षा देना चाहे तो सम्भवत: अधिकारियों को वे मान्य न हो। इसके अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि शैक्षिक संस्थाओं के कार्यकाल के बाद में गैर-जिम्मेदार व्यक्तियों द्वारा या असंयत व्यक्तियों द्वारा दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा से बहुत खराबियां पैदा हों या राष्ट्र का अपहित हो। अत: खंड (3) को हटा देने के पश्चात् ज्यों के त्यों रूप में अनुच्छेद 22 का मैं समर्थन करता हूं।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:__ श्रीमान्, खंड (3) को छोड़कर यह अनुच्छेद जिस रूप में है उस रूप में मैं उसका समर्थन करता हूं। मैं इस बात पर ज़ोर दूंगा कि प्रो. सक्सेना के संशोधन के स्थान में सभा संशोधन संख्या 661 को स्वीकार करे। मूल रूप में श्री सक्सेना का संशोधन यह है कि इस अनुच्छेद के दोनों (1) और (3) खंड निकाल दिये जायें, परन्तु संशोधन को पेश करते समय उन्होंने खंड (1) सम्बन्धी भाग को छोड़ दिया और खंड (3) से सम्बन्धित भाग पर ज़ोर दिया। इसके स्थान में केवल खंड (3) के ही हटाने के संशोधन संख्या 661 को कृपया स्वीकार किया जाये। श्रीमान्, इस अनुच्छेद के इस खंड का समर्थन करने में मुझे बड़ा दु:ख है कि हमारे इस धर्मप्रिय देश की किसी भी पाठशाला में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। अपनी पाठशालाओं में चाहे हम बच्चों को धार्मिक शिक्षा न दें, परन्तु पाठशालाओं के बाहर हम अपने सम्प्रदायों को नहीं भूल सकते हैं। मेरे मत के अनुसार धर्म समाज का मूल आधार है। समस्त सद्व्यवहार और सब अच्छे-अच्छे सिद्धांतों की कुंजी धर्म ही है। परन्तु जिन परिस्थितियों में हम हैं उनमें दुर्भाग्यवश अपने स्कूलों में अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने के विषय में हम कोई आग्रह नहीं कर सकते।

श्रीमान्, इस अनुच्छेद पर दो प्रकार के संशोधन पेश किये गये है। एक प्रकार के संशोधनों में यह कहा गया है कि स्कूल के सब बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने के लिये प्रावधान किये जायें। दूसरे प्रकार के संशोधनों में यह कहा गया है कि धार्मिक शिक्षा देने के विरुद्ध वर्तमान समय के कठोर प्रावधानों को और भी कठोर

बना दिया जाये और उन शैक्षिक संस्थाओं में भी, जिनका संचालन अकेला राज्य ही नहीं करता है और न जिनका राज्य पूर्णत: संधारण करता है, धार्मिक शिक्षा न दी जाये और उन संस्थाओं में भी धार्मिक शिक्षा न दी जाये जिनकी राज्य कुछ सहायता करता है अथवा जिनको राज्य अभिस्वीकृत करता हैं। ये दूसरे प्रकार के संशोधन हैं। श्रीमान्, मेरा विचार है कि आज जिन परिस्थितियों में हम हैं, उनमें दोनों में से किसी भी एक प्रकार के संशोधन को मानना संभव नहीं है। हमने एक असाम्प्रदायिक राज्य-निर्माण करने की प्रतिज्ञा की है। असाम्प्रदायिक शब्द से मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि हम किसी भी धर्म में विश्वास नहीं करते हैं और दैनिक जीवन क्रम में हमारा धर्म से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इसका केवल यही अर्थ है कि राज्य अथवा सरकार किसी विशेष धर्म की सहायता नहीं कर सकती अथवा किसी विशेष धर्म की दूसरे धर्म की अपेक्षा में अधिक सुविधा प्रदान नहीं कर सकती। अत: पूर्णत: असाम्प्रदायिक रूप ग्रहण करने के लिये हमारा राज्य बाध्य है पर इसका अर्थ यह नहीं कि समस्त धर्मों के प्रति उसका विश्वास उठ गया है। उन सदस्यों का भी धर्म से विश्वास नहीं उठा है जिन पर इस सरकार का कार्यभार है। मुझे विश्वास है कि हम में से कोई भी इस सीमा तक मूर्ति-पूजा-विरोधी अथवा नास्तिक नहीं हैं। हम सब और वे भी, जिन्होंने विधान के इस अनुच्छेद पर भाषण दिये हैं और विचार-विमर्श में भाग लिया है, किसी न किसी धर्म में विश्वास करते ही है। पर यह खेद की बात है कि हम किसी ऐसे विश्व-व्यापी धर्म का विकास नहीं कर सके, जिसमें धार्मिक प्रथाओं का इतना प्राबल्य न हो कि वे धर्म के मूल सिद्धांतों पर ही परदा डाल दें। हम सब एक ईश्वर की सत्ता, प्रार्थना, मनन इत्यादि में विश्वास करते हैं। हम ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण करने में विश्वास करते हैं और यह विश्वास करते हैं कि केवल त्याग और सेवा द्वारा ही हम ईश्वरत्व प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं। ये बातें सभी धर्मों में समान रूप से पाई जाती हैं। भगवत्-गीता में यह दिया हुआ है कि त्याग और सेवा द्वारा ही मानव ईश्वरत्व प्राप्त कर लेता है और मनुष्यों की सेवा ही ईश्वर का मूलरूप है। मैं इस बारे में बारीकियों में न जाकर केवल इतना ही कह देना पर्याप्त समझता हूं कि इस बात का मुझे खेद है कि वर्तमान परिस्थितियों में हम अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा नहीं दे सकते। यदि हम एक धर्म की शिक्षा देने लगें तो चाहे उस स्कूल में किसी अन्य धर्म का एक ही

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

विद्यार्थी हो, हमें उसके धर्म की शिक्षा देने की भी व्यवस्था करनी पड़ेगी। हम इस बात से भी भली प्रकार परिचित हैं कि एक धर्म में भी अनेकों मत-मतान्तर हैं हिन्दुओं में अनेकों मत हैं और फिर जैनमत, बौद्धमत, ईसाई-मत भी हैं तथा मुसलमान, पारसी इत्यादि भी हैं। अतः राज्य के लिये यह बिल्कुल असम्भव है कि वह समस्त धर्मों की शिक्षा देने की व्यवस्था कर सके। इन परिस्थितियों में हम केवल यही कर सकते हैं कि राज्य से सहायता पाने वाले स्कूलों में धार्मिक शिक्षा देना बन्द करा दें। यदि कोई एजेन्सी किसी संस्था को थोड़ा-सा धन दान देती है और उसमें धार्मिक शिक्षा दी जाती है तो उसका स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा आयंत्रण किया जायेगा और यदि वह शिक्षा विषाक्त है और यदि उस स्कूल में विद्वेष का पाठ पढ़ाया जाता है तो निःसन्देह सरकारी सहायता बन्द की जा सकेगी और इस प्रकार की बातों को रोकने के लिए अन्य साधन प्रयोग में लाये जा सकेंगे। राज्य के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह इस बात पर बिना विचारे कि शैक्षिक संस्था का किस प्रकार संचालन किया जाता है अपनी सहायता देता रहे। अतः हमें यह शंका नहीं करनी चाहिये कि उस संस्था में धार्मिक शिक्षा दी ही जायेगी जिसका अधिकांश व्यय राज्य द्वारा पूरा किया जाता है और कुछ थोड़ा-सा व्यय–चाहे वह एक पाई ही हो–अन्य एजेन्सी द्वारा पूरा किया जाता है। हमें इस बात को यहां विधान का अंग नहीं बनाना चाहिये। मुझे पूर्ण विश्वास है कि कोई भी सरकार 99 प्रतिशत रुपया देकर इस आधार पर धार्मिक शिक्षा नहीं देने देगी कि 1 प्रतिशत अन्य लोगों से मिलता है। अतः हमें किसी भी प्रकार के संशोधनों को स्वीकार नहीं करना चाहिये, बल्कि अपना ध्यान संशोधन संख्या 661 और संशोधन संख्या 645 की ओर लगाना चाहिए।

*उपाध्यक्षः यद्यपि मैं तो यही चाहूंगा कि उन अन्य सदस्यों को भी अवसर दूं, जिनके विचारों का मैं बहुत सम्मान करता हूं, परन्तु मैं देखता हूं कि हमारे समक्ष अनेकों वक्ता भाषण दे चुके हैं। बारह संशोधनों पर मत लेना है। नौ संशोधन पेश किये जा चुके हैं और मेरे ख्याल से 6 वक्ता बोल भी चुके हैं। मुझे प्रतीत होता है कि इस अनुच्छेद पर पर्याप्त वादानुवाद हो चुका है। अब मैं डॉ. अम्बेडकर को उत्तर देने के लिये आमन्त्रित करता हूं।

*पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं एक या दो बातों को स्पष्ट कराना चाहता हूं। मैं भाषण नहीं दूंगा केवल एक या दो बातों की व्याख्या कराना चाहता हूं।

*उपाध्यक्ष: मैं अपना निर्णय दे चुका हूं। मैं अब और अधिक भाषण देने की आज्ञा नहीं दे सकता, विशेषकर जब कि मैं और आप एक ही प्रान्त के हैं।

*पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र: एक प्रान्त के होने से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं केवल एक बात का स्पष्टीकरण चाहता था।

*उपाध्यक्ष: पंडित जी, मेरा निर्णय अन्तिम है। डॉ. अम्बेडकर!

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: उपाध्यक्ष, श्रीमान्, जितने संशोधन पेश किये गये हैं उनमें से मैं केवल इस अनुच्छेद में से उपखण्ड (3) को हटा देने वाले श्री कपूर के संशोधन संख्या 661 को स्वीकार करता हूं। मुझे खेद है कि मैं अन्य संशोधनों को स्वीकार नहीं कर सकता।

सभा में जो अनेकों मत प्रकट किये गये है उनको दृष्टि में रखते हुये यह ठीक होगा कि इस अनुच्छेद से क्या अभिप्राय है इस विषय की कुछ ब्यौरेवार व्याख्या मैं कर दूं। अनेकों संशोधनों पर विचार करने से जो कि पेश किये गये हैं, यह प्रकट होता है कि इस सम्बन्ध में तीन भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं। एक विचारधारा मद्रास के सदस्य मेरे मित्र मि. इस्माइल ने पेश की है। उनके मत के अनुसार धार्मिक शिक्षा देने में कोई रुकावट नहीं होनी चाहिये। वे केवल इस प्रतिबन्ध के पक्ष में हैं कि किसी व्यक्ति को धार्मिक शिक्षा में उपस्थित होने के लिये बाध्य न किया जाये। यदि मैंने उनको ठीक-ठीक समझा है तो वे इसी विचार के समर्थक हैं। हमारे समक्ष एक और विचारधारा है, जिसका प्रतिपादन मेरे मित्र श्री भूपेन्द्रसिंह मान तथा मि. तजम्मुल हुसैन द्वारा किया गया है। उनके अनुसार धार्मिक शिक्षा बिल्कुल ही न दी जाये, यहां तक कि उन संस्थाओं में भी न दी जाय, जो शैक्षिक संस्थायें नहीं हैं। इनके अतिरिक्त एक तीसरी विचारधारा है, जिसको प्रो. के. टी. शाह ने यहां उपस्थित किया है। वे कहते हैं कि केवल उसी संस्था में ही कोई धार्मिक शिक्षा न दी जाये, जो राज्य प्रणीवि से पूर्णत:

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

संधारित है; वरन् उसमें भी न दी जाये जो राज्य-प्रणीवि से केवल अंशत: संधारित है। इन सब विचारधाराओं को ध्यान में रख कर मैं यह कह सकता हूं कि मसौदे का जो रूप है, उसमें मध्यमार्ग को ग्रहण किया गया है और मुझे आशा है कि सभा को यह मान्य होगा। मेरे मित्र मि. इस्माइल ने इन विचारों का समर्थन किया है कि धार्मिक शिक्षा देने में कोई रुकावट न हो और धार्मिक शिक्षा अबाधरूपेण दी जाये। जहां तक मैं समझता हूं, इस विचार को तीन कारणों से स्वीकार नहीं किया जा सकता और मैं संक्षेप में उनको यहां बता देता हूं।

पहला कारण यह है कि हमने अनुच्छेद 21 में निहित इस बात को स्वीकार कर लिया है कि कर-द्वारा एकत्रित लोक-प्रणीवि का उपयोग किसी विशिष्ट सम्प्रदाय के लाभ के लिये नहीं किया जायेगा। उदाहरण के रूप में, यदि हमने किसी विशिष्ट धार्मिक शिक्षा देने की अनुमति दे दी और यदि किसी ज़िला अथवा स्थानीय मंडल द्वारा एक स्कूल स्थापित किया गया और उस स्कूल में इस आधार पर कि उसमें पढ़ने वाले अधिकांश विद्यार्थी हिन्दू हैं, धार्मिक शिक्षा दी जाने लगी, तो इसका नतीजा यह होगा कि इस प्रकार के कार्य से अनुच्छेद 21 में निहित प्रावधानों का अतिक्रम होगा। ज़िला-मंडल अपने क्षेत्र में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर कर लगायेगा। वह सामान्य रूप से कर वसूल करेगा और यदि ज़िला अथवा स्थानीय मंडल द्वारा केवल बहुसंख्यक सम्प्रदाय के बच्चों को ही धार्मिक शिक्षा दी, जाये, तो इससे अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होगा और वह इसलिये कि मुसलमान तथा अन्य धर्मों के बालक भी ज़िला-मंडल के कोष में धन देने के लिये, ज़िला-मंडल के कार्य के कारण, बाध्य होंगे, हालांकि वे ऐसी धार्मिक शिक्षा से कोई वास्ता नहीं रखना चाहते।

दूसरी कठिनाई प्रथम कठिनाई से कहीं अधिक ठोस है और वह यह है कि हमारे देश में अनेकों धर्म हैं। उदाहरण के रूप में, बम्बई नगर को ही लीजिये, जिसमें सब प्रकार के मनुष्य हैं, जो भिन्न-भिन्न मतों को मानते हैं। मान लीजिये कि बम्बई नगर में म्युनिसिपल्टी से संधारित एक स्कूल है। यह स्पष्ट है कि ऐसे स्कूल में हिन्दू-धर्म में विश्वास करने वाले मनुष्यों के भी बच्चे होंगे, ईसाई-समुदाय, पारसी-समुदाय, अथवा यहूदी-समुदाय के भी बच्चे होंगे। यदि और आगे बढ़ा

जाये, और मेरे विचार से इससे आगे बढ़ना वांछनीय भी है, तो हिन्दुओं में और भी अनेकों उप-विभाग होंगे; सनातनी हिन्दू, वैदिक धर्म में विश्वास करने वाले वैदिक हिन्दू, बौद्ध और जैन होंगे; हिन्दुओं में शैव भी होंगे, वैष्णव भी होंगे। क्या उस शैक्षिक संस्था से यह आशा की जायेगी कि वह ऐसे सब बच्चों से समान रूप में व्यवहार करेगा और सब धर्मों की शिक्षा देगा? मुझे तो यह प्रतीत होता है कि राज्य को इस प्रकार का कार्य सौंपना एक असम्भव कार्य को करने के लिये कहना है।

इस सम्बन्ध में जो तीसरी बात मैं कहना चाहता हूं, वह यह है कि दुर्भाग्यवश इस देश में जितने धर्म प्रचलित हैं, वे केवल असामाजिक ही नहीं हैं, बल्कि जहां तक उनका परस्पर सम्बन्ध है, वे समाज-विरोधी हैं; प्रत्येक धर्म यह प्रतिपादित करता है कि केवल उसकी शिक्षायें ही मोक्ष-प्राप्ति के लिये ठीक पथ-प्रदर्शन करती हैं और अन्य सब धर्म गलत हैं। मुसलमान यह विश्वास करते हैं कि जो व्यक्ति इस्लाम धर्म में विश्वास नहीं करता हैं, वह काफिर है और मुसलमानों से भ्रातृवत् व्यवहार पाने का अधिकारी नहीं है। ऐसा ही विश्वास ईसाइयों का है। इस बात को दृष्टि में रखते हुये मुझे यह प्रतीत होता है कि किसी एक धर्म के सच्चे स्वरूप और किसी अन्य धर्म के भ्रमात्मक स्वरूप के विवाद-पूर्ण प्रश्न को यदि हम किसी भी स्कूल में आने देंगे तो उससे उस स्कूल के शान्तिमय वातावरण में हम बहुत ही विघ्न डालेंगे। इसलिये मैं कहता हूं कि अनुच्छेद 22 (1) में यह देकर कि राज्य-संस्थाओं में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी, मेरे मतानुसार हमने ऐसा मार्ग अपनाया है जिसमें सबको सुभीता है। मेरा विचार है कि दूसरे खण्ड को पूर्ण रीति से नहीं समझा गया है। हमने उन संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा देने की अनुमति देकर, चाहे उनको राज्य से कुछ सहायता मिलती हो, एक समुदाय की मांग से साम्य उपस्थित करने का प्रयत्न किया है, जिसने अपने बच्चों की उन्नति के लिये, चाहे वह उन्नति शिक्षा सम्बन्धी हो अथवा संस्कृति सम्बन्धी हो, शैक्षिक संस्थायें खोल रखी हैं। राज्य सहायता प्रदान करने में स्वतन्त्र है और न प्रदान करने में भी स्वतन्त्र है। हमने केवल यही प्रतिबन्ध रखा है कि केवल इस आधार पर कि वह संस्था किसी समुदाय द्वारा संधारित है, न कि किसी सार्वजनिक संस्था द्वारा राज्य अपने सहायता देने के नियमों के अन्तर्गत उस संस्था को सहायता की मांग करने से नहीं रोकेगा। हमने वहां एक और मर्यादा की भी

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

व्यवस्था की है और वह यह है कि यद्यपि वह संस्था धार्मिक शिक्षा देने में स्वतन्त्र है और राज्य द्वारा दिये गये अनुदान से इस प्रकार की शिक्षा में कोई रुकावट नहीं होगी, परन्तु जब तक कि अन्य समुदायों के बच्चों के माता-पिताओं की सहमति प्राप्त न कर ली जायेगी, तक उन बच्चों को यह शिक्षा नहीं दी जायेगी या उन बच्चों के लिये यह शिक्षा अनिवार्य नहीं की जायेगी। मेरे विचार से यह कल्याणकारी प्रावधान है। इसके द्वारा हम दो बात कर सकेंगे।

***श्री एच. वी. कामतः** मैं एक बात का स्पष्टीकरण चाहता हूं। उन संस्थाओं और स्कूलों का क्या होगा जिनको कोई अल्पसंख्यक वर्ग अथवा समुदाय अपने ही विद्यार्थियों के लिये संचालित करता है—वह स्कूल नहीं जिसमें सब समुदाय मिलकर पढ़ते हैं, बल्कि वह स्कूल जिसको कोई समुदाय अपने छात्रों के लिये संचालित करता है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि मेरे मित्र कामत दूसरे अनुच्छेद को पढ़ेंगे तो उनको यह विदित हो जायेगा कि यदि एक बार किसी संस्था को अनुदान मिल जाता है, चाहे वह समुदाय द्वारा संधारित हो अथवा न हो तो उस पर यह प्रतिबंध लग जाता है कि वह सब समुदायों के लिए खुला रहेगा। इस प्रावधान को उन्होंने नहीं पढ़ा।

अतः उप-खण्ड (2) के द्वारा हम वास्तव में दो प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं। एक अभिप्राय यह है कि हम किसी समुदाय को, जिसने अपने धार्मिक अथवा सांस्कृतिक जीवन में प्रगति प्राप्त करने के लिये अपनी संस्थायें स्थापित कर रखी हैं, उन संस्थाओं में ऐसी शिक्षा देने की हम अनुमति दे रहे हैं। हमने यह भी व्यवस्था की है कि अन्य समुदायों के बच्चों को, जो ऐसे स्कूल में उपस्थित होते हैं, ऐसी धार्मिक शिक्षा में उपस्थित होने के लिये तब तक विवश नहीं किया जायेगा, जब तक कि उनके माता-पिता इस बात से सहमत न हों, क्योंकि वह शिक्षा निःसन्देह तथा स्पष्टतया उस विशिष्ट समुदाय के धर्म की ही होगी। जैसा कि मैं कहता हूं, हमने इन दो प्रयोजनों को सिद्ध किया है और जो धार्मिक शिक्षा देना चाहते हैं, वे अपनी संस्थायें स्थापित करने में स्वतन्त्र हैं और राज्य से सहायता पाने की मांग कर सकते हैं और धार्मिक शिक्षा दे सकते हैं, पर वे इस स्थिति

को ग्रहण नहीं कर सकेंगे कि अन्य समुदायों पर उस धार्मिक शिक्षा को लादें। अत: यह कहना ठीक नहीं है कि इस अनुच्छेद से हमने धार्मिक शिक्षा बिल्कुल ही बन्द कर दी है। कुछ शर्तों के अधीन प्रत्येक समुदाय को अपने लक्ष्य तथा उद्देश्यों के अनुसार धार्मिक शिक्षा देने की स्वतन्त्रता दे दी गई है। केवल यह रोक लगा दी गई है कि राज्यप्रणीवि से पूर्णत: संधारित संस्थाओं में राज्य धार्मिक शिक्षा न दे सकेगा।

*__पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र:__ क्या मैं माननीय सदस्य से एक प्रश्न पूछ सकता हूं? मान लीजिये, एक ऐसी शैक्षिक संस्था है, जिसका सारा प्रबन्ध सरकार करती है; जैसे कि संस्कृत-कालेज, कलकत्ता। वहां वेद की शिक्षा दी जाती है, स्मृत्तियां पढ़ाई जाती हैं, गीता का अध्ययन कराया जाता है और उपनिषदों का पाठ पढ़ाया जाता है। इसी प्रकार से बंगाल के कई भागों में संस्कृत-संस्थायें हैं जिनमें इन विषयों की शिक्षा दी जाती है। आप अनुच्छेद 22 (1) में यह व्यवस्था करते हैं कि राज्यप्रणीवि से पूर्णत: संधारित किसी संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। मेरा प्रश्न यह है कि क्या इसकी यह व्यवस्था की जायेगी कि वेद, अथवा स्मृति अथवा शास्त्र अथवा उपनिषद् की शिक्षा धार्मिक शिक्षा के अर्थ के अन्तर्गत है? ऐसी दशा में तो इन समस्त संस्थाओं को बन्द करना पड़ेगा।

*__माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:__ जिन संस्थाओं का मेरे मित्र श्री मैत्र ने उल्लेख किया है, मैं उनके स्वरूप को ठीक-ठीक नहीं जानता हूं, अत: इसका उत्तर देना मेरे लिये बहुत कठिन है।

*__पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र:__ उदाहरणार्थ सरकारी संस्कृत-कालेजों और स्कूलों में गीता, उपनिषद्, वेद तथा ऐसी अन्य पुस्तकों की शिक्षा के विषय को लीजिये।

*__माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:__ मेरा निजी विचार यह है कि धार्मिक शिक्षा को अनुसंधान अथवा अध्ययन से पृथक् रखना होगा। यह बिल्कुल भिन्न-भिन्न वस्तुएं हैं। धार्मिक शिक्षा का अर्थ यह है। उदाहरणार्थ, जहां तक इस्लाम धर्म का सम्बन्ध है। उसका आशय यह है कि आप एक ईश्वर में विश्वास करते हैं, आप यह विश्वास करते हैं कि रसूल पैगम्बर ही अन्तिम रसूल थे इत्यादि, इत्यादि। दूसरे शब्दों में हम इसे विश्वास कह सकते है, जिसमें तर्क की गुंजाइश नहीं। इस प्रकार का विश्वास अध्ययन से बिल्कुल पृथक् है।

*__उपाध्यक्षः__ क्या मैं एक मिनट के लिये दखल दे सकता हूं? कलकत्ता विश्वविद्यालय के कालेजों का निरीक्षक होने के नाते मैं संस्कृत-कालेजों का निरीक्षण किया करता था जिनमें, जैसा कि पंडित मैत्र को विदित है, विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम का ही अध्ययन नहीं करना होता, बल्कि पाठ्यक्रम से बाहर संस्कृत-साहित्य की पुस्तकों और यथार्थ में संस्कृत की पवित्र पुस्तकों का अध्ययन करना होता है। परन्तु इसको धार्मिक शिक्षा के रूप में कभी नहीं समझा गया। वह एक संस्कृत के पाठ्यक्रम के रूप में माना जाता था।

*__पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्रः__ मेरा प्रश्न यह है। वह अनुसन्धान का विषय नहीं है। यह केवल धार्मिक शिक्षा अथवा धर्म के अंगों का अध्ययन है। मैं पूछता हूं कि क्या गीता और उपनिषदों पर भाषण देना, धार्मिक शिक्षा प्रदान करना समझा जायेगा? उपनिषदों का विवेचन अनुसंधान का विषय नहीं है।

*__उपाध्यक्षः__ यह विद्यार्थियों को शिक्षा देने का विषय है और मैं कम से कम एक ऐसा उदाहरण जानता हूं कि उस संस्कृत-कालेज में एक मुसलमान विद्यार्थी था।

*__श्री एच.वी. कामतः__ एक बात स्पष्ट कराना चाहता हूं। क्या मेरे वयोवृद्ध मित्र डॉ. अम्बेडकर का यह विचार है कि केवल अपने ही समुदाय के विद्यार्थियों को शिक्षा देने के लिये उस समुदाय द्वारा संचालित स्कूल में भी धार्मिक शिक्षा अनिवार्य नहीं होगी?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ यह उन्हीं पर छोड़ दिया गया है। यह उस समुदाय पर छोड़ दिया गया है कि वह धार्मिक शिक्षा को अनिवार्य करे अथवा न करे। हम तो केवल यही निर्धारित करते हैं कि उस समुदाय को, जो स्कूल का संचालन करता है, अन्य समुदायों के बालकों के लिये धार्मिक शिक्षा अनिवार्य करने का अधिकार नहीं होगा।

*__प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेनाः__ जिस रूप में आपने "धार्मिक शिक्षा" की व्याख्या की है उस व्याख्या को विधान में कहीं रखना चाहिये।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: मेरे विचार से इसका निर्णय न्यायालय करेंगे, जब यह विषय उनके सन्मुख उपस्थित होगा।

*श्री नज़ीरुद्दीन अहमद: माननीय सदस्य ने खण्ड (3) का हटाना स्वीकार कर लिया है। यह एक व्याख्यात्मक टिप्पणी है। मैं यह पूछना चाहूंगा कि क्या उसके निकालने से उसमें निहित सिद्धान्त का प्रयोग नियम-विरुद्ध माना जायेगा।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: मेरा विचार यह है कि खण्ड (3) वास्तव में अनावश्यक है। वह किसी समुदाय द्वारा संधारित स्कूल से सम्बन्ध रखता है। स्कूल के कार्यकाल के पश्चात् समुदाय को यह स्वतन्त्रता है कि वह उसका जैसा चाहे प्रयोग करे। विधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं होना चाहिये।

श्रीमान्, एक और भी प्रश्न है जिसका मैं उल्लेख करना चाहूंगा और जिसको प्रो. के.टी. शाह ने उठाया है। वह यह कि जिन संस्थाओं के प्रन्यासी पद (ट्रस्टीशिप) को राज्य ने स्वीकार कर लिया है, उन संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा जारी रखने की अनुमति यह परादिक राज्य को देता है। मैं नही समझता हूं कि प्रो. शाह द्वारा उठाये गये प्रश्न में कुछ सार है। मेरे विचार से उनको यह अनुभव होगा कि ऐसे उदाहरण हैं कि इस देश के इतिहास के प्रारम्भ में धार्मिक शिक्षा देने के उद्देश्य से संस्थायें स्थापित की गई थीं और किसी कारणवश उनके प्रबन्ध के लिये मनुष्य न मिल सके और उन संस्थाओं को उनके प्रन्यासी (ट्रस्टी) के रूप में राज्य ने ले लिया। यह स्पष्ट है कि जब आप किसी प्रन्यास को स्वीकार करते हैं तो आपको उस प्रन्यास की सब बातों की पूर्ति करनी चाहिये। यदि राज्य ने इन संस्थाओं को ले लिया है और अपने आपको प्रन्यासी के रूप में मान लिया है तब यह स्पष्ट है कि आप सरकार से यह नहीं कह सकते कि चाहे आप अब तक धार्मिक शिक्षा दे रहे थे पर अब से पश्चात् आप ऐसी शिक्षा नहीं दे सकेंगे। मेरे विचार से, ऐसा करने से प्रन्यास भंग करने के लिये केवल राज्य को अनुमति ही नहीं मिल जायेगी, वरन् उसे विवश होकर प्रन्यास की शर्त को भंग करना होगा। अत: इस परिस्थिति को स्पष्ट करने के लिये हमने इस परादिक का रखना वांछनीय तथा आवश्यक समझा, जो नि:सन्देह किसी सीमा तक अनुच्छेद 20 के उपखण्ड (1) में निहित मूल विचार के अनुकूल नहीं है। श्रीमान्, मैं आशा करता

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

हूं कि जिस रूप में अब अनुच्छेद है उसी रूप में सभा उसे संतोषजनक समझेगी और उसे स्वीकार कर लेगी।

***उपाध्यक्ष:** मैं अब एक-एक करके संशोधनों पर मत लूंगा। सर्वप्रथम मैं संशोधन संख्या 640 के प्रथम विकल्प पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:

'22. No person attending an educational institution maintained, aided or recognised by the State shall be required to take part in any religious instruction in such institution without the consent of such person if he or she is a major or without the consent of the respective parent or guardian if he or she is a minor."

(22. राज्य द्वारा संधारित, सहायता प्राप्त अथवा अभिज्ञात किसी शैक्षिक संस्था में जाने वाले किसी व्यक्ति को उस संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिये यदि वह प्राप्त-वयस्क है, तो उसकी सहमति के और यदि वह अवयस्क है तो उसके माता-पिता अथवा संरक्षक की सहमति के बिना मजबूर न किया जायेगा।)

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** इसके बाद हम सूची संख्या 1 के संशोधन संख्या 19 द्वारा संशोधित संशोधन संख्या 641 पर आते हैं। मैं पहले सूची संख्या-1 की संशोधन-संख्या 19 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 641 के स्थान में निम्न रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) और (3) को निकाल दिया जाये।' "

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 641 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये :

'22. The State shall not compel anyone to have religious instruction in a religion not his own in schools against his wishes, but the State shall endeavour to develop religious tolerance and morality among its citizens by providing suitable courses in various religions in schools.'

(22. राज्य किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध पाठशालाओं में उसके धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म की शिक्षा पाने के लिये विवश नहीं करेगा, पर पाठशालाओं में विभिन्न धर्म के उपयुक्त पाठयक्रम की व्यवस्था करके राज्य अपने नागरिकों में धार्मिक सदाचार और सहनशीलता को उन्नत करने का प्रयास करेगा।)"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्ष:__ इसके बाद संशोधन संख्या 647 है।

प्रस्ताव यह है :

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में 'in any educational institution wholly' (राज्यप्रणीवि से पूर्णत:) शब्दों के पश्चात् 'or partly' (अंशत:) शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्ष:__ इसके पश्चात् संशोधन संख्या 643 है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में 'shall be provided' (दी जायेगी) शब्दों के पश्चात् 'or permitted' अथवा न दिये जाने की (अनुमति दी जायेगी) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्ष:__ इसके पश्चात् संशोधन संख्या 644 है।

[उपाध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में से 'educational' (शैक्षिक) शब्द निकाल दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्षः__ इसके पश्चात् संशोधन संख्या 645 है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में से 'by the State' (राज्य द्वारा) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्षः__ इसके पश्चात् संशोधन संख्या 646 है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में से 'by the State' (राज्य द्वारा) शब्द और 'wholly maintained out of State funds' (राज्य-प्रणीवि से पूर्णतः संधारित) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्षः__ इसके पश्चात् संशोधन संख्या 653 है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) के परादिक के अन्त में निम्न जोड़ दिया जाये:

'and the income from which trust or endowment is sufficient to defray the entire expenditure of such institution.'

(और उस प्रन्यास अथवा नीवि की आय इस संस्था के समस्त व्यय को पूरा करने के लिये पर्याप्त हो।)"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्षः__ इसके पश्चात् संशोधन संख्या 658 है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (2) में से 'recognised by the State or' (राज्याभिज्ञात अथवा) शब्दों को निकाल दिया जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** इसके पश्चात् संशोधन संख्या 661 है। इसे स्वीकार कर लिया गया है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (3) को निकाल दिया जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** इसके पश्चात् संशोधन संख्या 662 है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (3) में 'providing' (देने) शब्द के स्थान में 'being permitted to provide' (देने के लिये अनुमति दिये जाने में) शब्द रखे जायें और 'educational institution' (शैक्षिक संस्था के कार्यकाल) शब्दों के पश्चात् 'in or' (में अथवा उस) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** अन्तिम संशोधन संख्या 664 है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (3) में 'outside its working hours' (शैक्षिक संस्था के कार्यकाल के पश्चात् धार्मिक शिक्षा देने में रुकावट न होगी) शब्दों के स्थान में निम्न रखा जाये:

'maintained by that community from its own funds provided that no educational institutions, nor any education or training imparted, therein shall be recognised unless it provides instruction or training in courses laid down for public instruction in the regular system of education for the country and complies in all other respects with methods, standards, equipment and other requirements of the national system of education.'

(उस समुदाय द्वारा स्वयं अपनी ही प्रणीवि से संधारित शैक्षिक संस्था में शिक्षा देने में रुकावट न होगी परन्तु कोई शैक्षिक संस्था अथवा उसमें दी हुई कोई शिक्षा अथवा प्रशिक्षा तब तक स्वीकृत नहीं की जायेगी जब तक

[उपाध्यक्ष]

वह संस्था देश की नियमित शिक्षा-प्रणाली में लोक-शिक्षा के लिये निर्धारित पाठ्यक्रम की शिक्षा तथा प्रशिक्षा न दे और अन्य समस्त रूप में राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की विधि, स्तर, साधन तथा अन्य आवश्यकताओं के अनुकूल न हो।)"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 22 विधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया

संशोधित रूप में अनुच्छेद 22 विधान में प्रविष्ट किया गया।

(संशोधन संख्या 666 पेश नहीं किया गया।)

अनुच्छेद 22-क (नया अनुच्छेद)

*__प्रोफेसर के.टी. शाहः__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'22-A. All privileges, immunities or exemptions of heads of religious organisations shall be abolished.' "

(22क. धार्मिक संघों के अध्यक्षों के समस्त विशेष अधिकार, रियायतें और छूट समाप्त कर दी जायेंगी।)

कदाचित् यह सबको सामान्यतया विदित नहीं होगा कि धार्मिक संघों के अध्यक्ष कुछ अति प्रादेशिक अथवा अति नागरिक विशेषाधिकारों का उपभोग करते हैं। वे नागरिक विशेषाधिकारों, रियायतों और छूटों का उपभोग करते हैं और उनके कारण एक पृथक् वर्ग बन जाते हैं; पर अधिकतर उनके इन विशेषाधिकारों से लोक-प्रणीवि को बड़ी भारी क्षति होती है और जन-हित को भारी धक्का लगता है।

नाम सम्बन्धी अथवा प्रथा सम्बन्धी विशेषाधिकारों के उपभोग करने पर

उपाधियों, उच्च आसन, सम्मान पद तथा अन्य समान बातों पर मैं कोई आपत्ति नहीं करता कुछ धर्माध्यक्षों को तो राजाओं के समान समझा जाता है और उनके समान उनको ग्यारह तोपों की सलामी दी जाती है, यद्यपि यह सलामी उनके ही खर्च से दी जाती है; पर वे इस स्थिति में हैं कि वे इस सम्मान को प्राप्त करने की मांग कर सकते हैं। जैसा कि अभी मैं कह चुका हूं मैं इस बात का विरोध नहीं करता क्योंकि जब भी वे इस प्रकार का सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं तभी उनको स्वयं उसका खर्चा देना होता है। पर इनको ऐसी रियायतें और छूटें दी जाती हैं कि जिनसे वे देश के शेष नागरिकों से पृथक् विशिष्टता प्राप्त कर लेते हैं और इस प्रकार इस सरल सिद्धान्त को तोड़ते हैं जो यह ठहराता है कि बिना किसी उपाधि, जन्म, मत अथवा लिंग के भेद-भाव के इस देश के समस्त नागरिक परस्पर समान हैं।

इसे मैं सैद्धान्तिक दृष्टि से आपत्तिजनक समझता हूं क्योंकि इसके द्वारा उत्पन्न असमानता इस विधान द्वारा नागरिकों को प्रत्याभूत अधिकारों पर सीधा तथा पूरा प्रभाव डालती है। धर्माध्यक्षता को यदि सचमुच उसी भाव और उसी रूप में समझा जाये जिस भाव और रूप में इसको सोचा गया था तब तो उस पद के धारण करने वालों की स्थिति पूर्णतः भिन्न हो...

*__श्री कृष्णचन्द्र शर्मा__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): माननीय सदस्य किसको इस प्रकार के अधिकारों के देने का विचार कर रहे हैं? यह मूलाधिकारों का अध्याय है। मूलाधिकारों से इस प्रस्ताव का कोई सम्बन्ध नहीं है।

*__प्रोफेसर के.टी. शाहः__ यह तो अध्यक्ष के कहने की बात है।

*__उपाध्यक्षः__ प्रोफेसर शाह अपना वक्तव्य जारी रख सकते हैं।

*__प्रोफेसर के.टी. शाहः__ श्रीमान्, मैं यह कह रहा हूं कि यह स्वीकृत मूलाधिकारों की खिलाफवर्जी है। मैं किसी नये अधिकार पर ज़ोर नहीं दे रहा हूं। मैं इस प्रकार की छूटों के एक या दो उदाहरण दूंगा। ऐसी छूटें अब तक दी जाती थीं और मेरे विचार से अब भी दी जाती हैं। उदाहरण के लिये, धर्माध्यक्षों के उपयोग के लिये विदेशों से आने वाले माल पर चुंगी-कर की छूट और आय-कर की छूट को हम ले सकते हैं। जल-मार्ग से मंगाये जाने वाले माल पर भी अधिनियम और आय-कर अधिनियम से मुक्त होने की मांग उन परम्परागत विशेषाधिकारों के आधार पर की जाती है जो वर्ग-प्रधान समाज में सौजन्यता के नाते उनको प्रदान किये गये थे। मैं यह ठीक-ठीक नहीं बता सकता हूं कि इन

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

अनेकों समुदायों के अनेकों धर्माध्यक्षों को इन विशेषाधिकारों को प्रदान करने से राज्य को कितनी आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है। ये लोग बाहर के माल अथवा विदेशी वस्तुओं से विशेष रुचि रखते हैं और विदेशों से बहुत अधिक माल लगातार मंगाते रहते हैं। यद्यपि ये विलास की सामग्री होती हैं और यद्यपि धर्माध्यक्षों की आय भी काफी होती है फिर भी वे चुंगी-कर से बच जाते हैं और आय-कर से मुक्त होने की मांग करते हैं।

*__उपाध्यक्ष:__ शान्ति, शान्ति; सभा में बहुत शोर हो रहा है।

*__प्रोफेसर के.टी. शाह:__ श्रीमान्, इस सम्बन्ध में मैं यह ठीक-ठीक नहीं बता सकता हूं कि इन बातों से आज देश को कितनी आर्थिक हानि होती है। आज कल आय पर जो बहुत अधिक कर लिया जाता है उस पर विचार करते हुये तो इन कर-विमुक्त आयों पर कर लगाने से बहुत अधिक आमदनी हो सकती। अनेकों धर्माध्यक्षों की आय बहुधा लाखों और यहां तक कि करोड़ों रुपये है। अत: यदि उसी दर से इन पर कर लगाया जाये जिस दर से कि और लोगों पर लगता है और यदि उसी प्रकार से उनसे कर भी वसूल किया जाये और यदि इन लोगों से कर वसूल करने में उतनी ही कड़ी और सही नीति बरती जाये, तो मैं समझता हूं कि सरकारी खजाने को बहुत ही लाभ होगा। वर्तमान दर के अनुसार एक करोड़ रुपये की आय पर 92 1/2 लाख रुपया कर होगा, और यदि आगाखां जैसे 10 धर्माध्यक्ष हों, तो उनसे आय-कर न लेने के कारण सरकारी खजाने को 9.25 करोड़ रुपये या उससे भी अधिक रुपये का नुकसान उठाना पड़ता है।

धर्माध्यक्षों के इन विशेषाधिकारों और रियायतों के होने से राज्य को इतने अधिक धन की हानि होती है, कदाचित् इस बात की ओर ही हमारा ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है। ये विशेषाधिकार तत्त्वत: धर्म से सम्बन्ध नहीं रखते; इनका सम्बन्ध तो मुख्यतया सांसारिक जीवन और लौकिक सुविधाओं से है और यदि इस बात के कहने की मुझे स्वतंत्रता हो तो मैं कह सकता हूं कि इन सबसे तो धर्म का पत्तन ही होता है क्योंकि इन सबका प्रयोजन तो केवल आर्थिक और भौतिक सुख-साधन ही हैं। अत: उनके विरुद्ध हमें अपनी आवाज़ उठानी चाहिये।

इसलिये ये विमुक्तियां और विशेषाधिकार इस संविधान के पारण या उसके पश्चात् खत्म हो जाने चाहियें। मेरा विचार है कि यह बात इस सभा को उचित लगती है और स्वीकार कर ली जायेगी।

*__उपाध्यक्षः__ संशोधन संख्या 668 और 669 भाषा तथा लिपि के सम्बन्ध के हैं। अतः उनको इस समय स्थगित किया जाता है। श्री दामोदरस्वरूप सेठ अब अपना संशोधन संख्या 670 पेश कर सकते हैं।

*__श्री जैड.एच. लारी__ (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्। जिस अनुच्छेद पर पहले संशोधन पेश किया गया था। वह इस अनुच्छेद से सर्वथा भिन्न है जिसको इस बाद के संशोधन द्वारा प्रविष्ट करने का प्रयास किया गया है।

*__उपाध्यक्षः__ मैंने सोचा कि यदि एक-एक करके सब संशोधन पेश कर दिये जायें तो समय की बचत होगी।

*__श्री जैड.एच. लारीः__ पर दो अनुच्छेदों पर साथ-साथ वादानुवाद नहीं हो सकता है। दूसरे अनुच्छेद पर विचार करने के पूर्व पहले अनुच्छेद पर विचार समाप्त कर देना होगा।

*__उपाध्यक्षः__ क्या माननीय सदस्य उस बात पर अभी वाद-विवाद करना चाहते हैं?

*__श्री ज़ैड.एच. लारीः__ जी हां।

*__उपाध्यक्षः__ वह बाद में हो सकता है।

*__श्री जैड.एच. लारीः__ पर ये दोनों अनुच्छेद भिन्न-भिन्न हैं और संशोधन भी भिन्न-भिन्न हैं।

*__उपाध्यक्षः__ जब सदस्य बोलने के लिये उपस्थित हों वे यह कह सकते हैं कि वे अमुक अनुच्छेद अथवा अमुक संशोधन पर बहस कर रहे हैं। अथवा यदि वे चाहते हैं तो मैं सेठ दामोदरस्वरूप से निवेदन कर सकता हूं कि वे बाद में भाषण दें।

श्री ज़ैड.एच. लारी: वह कार्य-प्रणाली ठीक होगी।

***उपाध्यक्ष:** पारिभाषिक रूप में वह ठीक है। पर जिस प्रणाली को मैंने ग्रहण किया है उससे मैं सभा के समय की बचत कर लूंगा। किन्तु इस बात में मेरा कोई आग्रह नहीं है; आप चाहे जिस प्रणाली को अपना सकते हैं।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): क्या मैं यह जान सकता हूं कि यह आपका निर्णय है अथवा मि. लारी का?

***उपाध्यक्ष:** मैं जानता हूं कि माननीय सदस्य मि. लारी मेरे निर्णय को स्वीकार करने के लिये राजी हैं। पर मैं सबको खुश करना चाहता हूं। यह मेरी दुर्बलता है। क्या मि. लारी मेरी बात को स्वीकार करते हैं?

***श्री ज़ैड.एच. लारी:** श्रीमान्, मैं आपके निर्णय को शिरोधार्य करता हूं।

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'22-A. The use of religious institutions for political purposes and the existence of political organisations on religious basis is forbidden.' "

(22-क. धार्मिक संस्थाओं का राजनैतिक प्रयोजनों के लिये उपयोग और धार्मिक आधार पर राजनैतिक संगठनों के अस्तित्व का निषेध किया जाता है।)

विधान का मसौदा ठीक और न्यायपूर्ण रूप से समस्त नागरिकों को प्रत्याभूति देता है...।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अनुच्छेद 19 (2) (क) में यह बात आ जाती है।

***उपाध्यक्ष:** मुझे यह बताया गया है कि अनुच्छेद 19 (2) (क) में आपकी बात आ जाती है।

***श्री एच.वी. कामत:** अनुच्छेद 19 (2) (क) धर्म से सम्बद्ध राजनैतिक अथवा अन्य ऐहिक कार्यों को नियमित अथवा आयंत्रित करता है, जब कि

सेठ दामोदरस्वरूप का संशोधन उनका पूर्णतया निषेध करता है। पूर्ण निषेध और नियमन में बहुत अन्तर है।

***पंडित ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): अनुच्छेद 19 (2) में 'prohibiting' (निषेध) जोड़ देने के लिये एक संशोधन रखा गया था और उस संशोधन को सभा ने स्वीकार नहीं किया।

***उपाध्यक्ष:** उसका लगभग वही अर्थ है जो कि सेठ दामोदरस्वरूप के संशोधन का है। यह बात ली जा चुकी है। मैं इसके पेश करने की आज्ञा नहीं दे सकता।

संशोधन संख्या 671 । यह गोवध के बारे में है। यह विषय भी लिया जा चुका है।

संशोधन संख्या 672 भाषा और लिपि के बारे में है। अत: हमारे पास केवल एक संशोधन संख्या 667 बाकी रहता है और मि. लारी की आपत्ति स्वत: दूर हो गई। प्रो. के.टी. शाह के संशोधन संख्या 667 पर अब सामान्य वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा:** उपाध्यक्ष श्रीमान्, मुझे प्रो. शाह के संशोधन का मूलाधिकारों से कोई सम्बन्ध नज़र नहीं आता। संशोधन इस प्रकार है:

> "धार्मिक संघों के अध्यक्षों के समस्त विशेषाधिकार, रियायतें और छूट समाप्त कर दी जाती है।"

यह कहकर कि अमुक-अमुक व्यक्तियों को अमुक-अमुक अधिकार नहीं होंगे, कोई अधिकार नहीं दिया जाता है। अत: मैं यह नहीं समझ पाता कि इस प्रस्ताव में मूलाधिकारों का प्रश्न किस प्रकार निहित है और मूलाधिकारों के अध्याय में इस प्रस्ताव को किस प्रकार स्थान मिल सकता है। मेरा निवेदन है कि इस प्रस्ताव के लिये यह उपयुक्त स्थान नहीं है अत: इसको विधान के इस अध्याय में नहीं रखना चाहिये।

दूसरी बात जिसको मैं कहना चाहता हूं यह है कि प्रो. शाह धर्म से बहुत ही भयभीत दिखाई देते हैं। धर्म में जो दोष हैं वे स्वयं धर्म में नहीं हैं वरन् उसे दोषपूर्ण प्रचार अथवा अयोग्य या अवांछनीय व्यक्तियों द्वारा उसके प्रचार में हैं।

[श्री कृष्णचन्द्र शर्मा]

धर्म स्वयं तो समस्त शील, समस्त सामाजिक और नैतिक आदर्शों और समस्त मानव संस्थाओं का आधार है। सच तो यह है कि मुझे यह दिखाई नहीं देता कि धर्म में क्या दोष है। यदि धर्म दोषपूर्ण व्यक्तियों द्वारा बरता जाय और यदि धर्म का अयोग्य व्यक्तियों द्वारा प्रचार किया जाय तो उससे स्वतः धर्म दोषपूर्ण नहीं हो जाता।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी__ (आसाम : जनरल): श्रीमान्, माननीय मित्र प्रो. शाह द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव का मैं विरोध करता हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि वे धर्माध्यक्षों के इतने विरुद्ध क्यों हैं। मेरे विचार से मेरे माननीय मित्र यह जानते हैं कि व्यवहार कार्य-प्रणाली संहिता में ऐसे प्रावधान हैं, जिनके आधार पर भूतपूर्व मंत्री भी कुछ महीनों तक न्यायालय में उपस्थित होने से मुक्त हो जाते हैं। मेरे प्रान्त में शमाधिकार लोग हैं जिनको सामान्यतया किसी भी न्यायालय में उपस्थित होने से मुक्त कर दिया गया है। यदि दैवात् उनको किसी न्यायालय में उपस्थित होने और साक्षी देने के लिये विवश किया जाता है, तो इससे उनके शिष्यों में बड़ी बेचैनी होती है। मेरी समझ में नहीं आता कि प्रो. शाह धर्माध्यक्षों के विशेषाधिकारों को संविधान द्वारा खत्म करने के लिये इतने उत्सुक क्यों हैं, जबकि वे उन विशेषाधिकारों के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहते, जिनका उपयोग कुछ उच्च पदाधिकारी आज भी करते हैं और न यह बात समझ में आती है कि प्रोफेसर साहब इस बात को न्यायालयों पर क्यों नहीं छोड़ देना चाहते कि वे यह तय करें कि इस प्रकार की विमुक्तियां और विशेषाधिकार किन आवश्यक हालातों में बरती जा सकती है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ उपाध्यक्ष महोदय, संभवतः इस संशोधन का उद्देश्य बड़ा ही प्रशंसनीय है, यह मैं समझता हूं कि यह संशोधन बिल्कुल ही आवश्यक नहीं है। सर्वप्रथम ये सब उपाधियां इत्यादि जो धर्माध्यक्षों को मिली हुई हैं, अब से पश्चात् राज्य द्वारा नहीं दी जायेंगी, क्योंकि हमने मूलाधिकारों में यह समावेश कर ही दिया हैं कि कोई उपाधि नहीं दी जायेगी; अतः यह स्पष्ट है कि ऐसी कोई उपाधि राज्य द्वारा नहीं दी जायेगी। दूसरी बात जिससे मेरे माननीय मित्र शायद परिचित हैं, यह है कि यदि कोई आदमी अपने नाम के साथ कोई उपाधि स्वयं ही लगा लेता है, तो उसे सरों से मनवाने के लिये वह कोई कानूनी कार्यवाही नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति अपने आपको शंकराचार्य

कहता है और यदि कोई अन्य व्यक्ति उसे शंकराचार्य कहना स्वीकार नहीं करता है, तो दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। व्यवहार कार्य-प्रणाली-संहिता की धारा 9 में यह स्पष्ट कहा गया है कि जिसको आप गौरव कहते हैं, उसको मनवाने के लिये कोई दावा दायर नहीं किया जा सकता। हां, यदि उस गौरव से संयुक्त कुछ परिलाभ अथवा किसी प्रकार की सम्पत्ति है, तब तो बात दूसरी होती हैं; परन्तु एकमात्र गौरव ही दावा करने का आधार नहीं हो सकता। जो विशेष सुविधायें कुछ लोगों को प्राप्त हैं, उनका अंत:करण अधिशासी-मंडल और विधान-मंडल के हाथ की बात है। जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री चौधरी ने कहा है, यह बिल्कुल सच है कि कुछ लोगों को मजिस्ट्रेट द्वारा सम्मन भेजे जाते है। कुछ अन्य लोगों को, जो उच्च पद प्राप्त किये हुये हैं, सम्मन भेजने के स्थान में वह उनको पत्र भेजता है। कुछ लोग न्यायालयों में खड़े रखे जाते हैं और कुछ लोगों को कुर्सियां दी जाती हैं। ये सब गौरव सम्बन्धी विषय हैं, जो पूर्णतया विधान-मंडल और सरकार के हाथ में हैं। यदि इनके कारण नागरिकों में परस्पर कोई अनियमितता अथवा विरोध अथवा असमानता होती है, तो नि:सन्देह विधान-मंडल और सरकार—इन दोनों-को यह अधिकार है कि वे इन अनियमितताओं को हटा दे।

*__उपाध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'22-A. All privileges, immunities or exemptions of heads of religious organisations shall be abolished.' "

(22-क. धार्मिक संघों के अध्यक्षों के समस्त विशेष अधिकारों, रियायतों का और छूटों का अन्त कर दिया जायेगा।)

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 23

*__उपाध्यक्ष:__ अब हम आगे के अनुच्छेद को लेंगे। पहला संशोधन संख्या 673 पर है जिसको इस स्पष्ट आधार पर पेश नहीं करने दिया जा सकता है कि वह निषेधात्मक है। इसके बाद हम संशोधन संख्या 674 पर आते हैं।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 23 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'23. Without detriment to the spiritual heritage and the cultural unity of the country, which the State shall recognise, protect and nourish, any section of the citizens residing in the territory of India or any part thereof, claiming to have a distinct language, script and culture shall be free to conserve the same.' "

(23. देश की आध्यात्मिक परम्परा और सांस्कृतिक एकता को, जिनको राज्य स्वीकार करेगा और उनकी रक्षा और पोषण करेगा, हानि पहुंचाये बिना भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके भाग के निवासी नागरिकों के किसी वर्ग को, जिनकी विशेष भाषा, लिपि और संस्कृति है, इनके संरक्षण का अधिकार होगा।)

श्रीमान्, वर्तमान अनुच्छेद सं. 23 के स्थान में इस अनुच्छेद को रखने के प्रस्ताव को पेश करते हुये, जो कुछ अनुच्छेद 23 में कहा गया है, न तो मैं उसके अलावा कोई नई बात रख रहा हूं, और न उसकी किसी बात का विरोध ही कर रहा हूं। यह सत्य है और अनुच्छेद 23 में इस बात को सत्य मान लिया गया है कि भारत के राज्य-क्षेत्र में हमारी भिन्न-भिन्न लिपियां हैं, हमारी भिन्न-भिन्न भाषायें हैं और यहां तक कि हमारी संस्कृतियां भी भिन्न-भिन्न हैं और यह मान लिया गया है कि इन सबको स्वीकार करना है, तथा उनकी रक्षा करनी है और इस बात की सुविधा देनी है कि वे फलें-फूलें। परन्तु मैं यह कहूंगा कि जिस प्रकार एक अंग्रेज़ी कहावत के अनुसार समस्त सड़कें रोम तक जाती हैं और उनको रोम तक जाना भी चाहिये, उसी प्रकार इन समस्त संस्कृतियों को, इन समस्त भाषाओं को और इन समस्त लिपियों को एक ही उद्देश्य प्राप्त करने के साधन के रूप में मानना चाहिये, और उस उद्देश्य को राज्य को स्वीकार करना चाहिये और उसकी उन्नति तथा रक्षा करनी चाहिये। वास्तव में हमारी यही इच्छा रही है और हमारी स्वतन्त्रता तथा हमारे अभ्युदाय की उत्पत्ति का यही मूल कारण रहा है कि उन समस्त अनेकताओं के होते हुये भी, जिनमें कि हम विभाजित हैं,

हम एकता की ओर बढ़ते गये हैं। अतः सभा से मेरा निवेदन है कि यद्यपि हमारे यहां अनेकों भाषायें, अनेकों संस्कृतियां, अनेकों लिपियां और अनेकों धर्म हैं, फिर भी हमारे लिये किसी ऐसे आदर्श को स्थापित कर लेना असम्भव नहीं है, जो सारे भारत के लिये समानरूपेण मान्य हो और जो हमारी प्राचीन परम्परा से मिला हो, जो अब तक वर्तमान है और हमें शक्ति दे रही है तथा प्रोत्साहित कर रही है। जिस प्रकार समुद्र में सारी नदियां मिलती हैं, उसी प्रकार इस भारतवर्ष रूपी सांस्कृतिक समुद्र में, इस भारतवर्ष रूपी आध्यात्मिक समुद्र में, हमारी परम्परा के अनुसार हमारी विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, लिपियों, आशाओं तथा महत्त्वाकांक्षाओं की सारी धारायें मिलें और अपार विशाल समुद्र का निर्माण करें। श्रीमान्, अनुच्छेद 23 में जहां हमारी विभिन्नताओं को स्थान मिला है, वहीं साथ-साथ हमारी एकता के आदर्श को भी स्थान मिलना चाहिये, क्योंकि जब तक हम में ऐसी एकता नहीं होती, तब तक प्रशासन-तंत्र द्वारा, राज्य के वाहन द्वारा, बाह्य विधियों की आज्ञा द्वारा में एकता स्थापित नहीं की जा सकती। बाह्य कानून के नियममात्र हैं, हम एकता प्राप्त नहीं कर सकते है। अतः वास्तविक एकता के लिये, आन्तरिक एकता के लिये तथा प्राकृतिक एकता के लिये हमें किसी ऐसे आत्मज्ञान, किसी ऐसी संस्कृति तथा किसी ऐसी भाषा का विकास करना चाहिये, जिसमें सब बातें हों और जो सब बातों को वहन करे और फिर भी वह सब बातों से अधिक महत्त्वपूर्ण हो और साथ ही साथ अनन्त अतीत से अनन्त भविष्य तक प्रवाहित रहे। अतः श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि जिस संशोधन को मैं पेश कर रहा हूं, उसे सभा स्वीकार करे। सभा समझ गई होगी कि उस एकता का विकास किये बिना कोई वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती, जो एकता कि केवल एक महान् आदर्श पर पहुंच कर ही प्राप्त की जा सकती है—उस आदर्श के अधीन जो हमें बताता है कि हम सब एक हैं, यद्यपि हम लगते अनेक हैं। मन के उस कोठे में, जहां आत्मा का निवास है, पहुंच कर और संस्कृति के उस वातावरण में, जिसका हम सब पोषण करते चले आये हैं। और बिना ऐसे आदर्श को अपनाये हम संसार की सभ्यता को कोई मूल्यवान भेंट न दे सकेंगे और न संसार की एकता तथा मानवों में शांति और सभ्यता का विस्तार कर सकेंगे।

*मौलाना हसरत मोहानी (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): क्या मैं सुझाव दे सकता हूं कि हम इस संशोधन पर बाद में निर्णय करें अथवा तब तक विचार न करें जब तक कि यह निर्णय न कर लिया जाये कि कौन-सी भाषा राष्ट्र-भाषा मानी जायेगी और लिपि कौन-सी होगी? क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि यह संशोधन स्थगित कर दिया जाये।

*उपाध्यक्ष: मौलाना साहब, जो बात आपने कही उसे मैं न समझ सका। आपका मतलब संशोधन संख्या 674 से है अथवा समस्त अनुच्छेद से।

*मौलान हसरत मोहानी: इस अनुच्छेद से, श्रीमान्।

*उपाध्यक्ष: श्री लोकनाथ मिश्र कहते हैं "देश की आध्यात्मिक परम्परा और सांस्कृतिक एकता को, जिनका राज्य अभिस्वीकरण इत्यादि, इत्यादि।" अत: भाषा और लिपि का प्रश्न कहीं भी उपस्थित नहीं होता है। चाहे भारत के विभिन्न भागों में प्रयोग की जाने वाली भाषायें पृथक्-पृथक् हों फिर भी सांस्कृतिक एकता के सम्बन्ध में सोचा जा सकता है। अत: मैं आपकी आपत्ति को उचित नहीं समझता हूं।

*श्री लोकनाथ मिश्र: मैंने तो अपनी आशाओं और महत्त्वाकांक्षाओं का उल्लेख किया था जिनके आधार पर हम भविष्य में अपनी यात्रा करेंगे। मैं यह नहीं कहता हूं कि हम यहां अभी कुछ करें।

*मौलाना हसरत मोहानी: मैं समझता हूं कि जिस प्रकार आपने अनेकों संशोधनों के सम्बन्ध में निर्णय किया है इस संशोधन को भी स्थगित किया जाये। हम तब तक इस पर निर्णय नहीं कर सकते जब तक हम यह निर्णय नहीं कर लेते कि हमारे समस्त देश की कौन-सी भाषा होगी और क्या लिपि होगी। अभी हम यह कैसे कह सकते हैं।

*उपाध्यक्ष: इस संशोधन का राष्ट्रीय भाषा और लिपि से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह यहां नियमानुकूल है।

(संशोधन संख्या 675 पेश नहीं किया गया।)

***श्री ज़ैड.एच. लारी:** उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं:

"कि अनुच्छेद 23 के खण्ड (1) के स्थान में निम्न रखा जाये:

'(1) Minorities in every unit shall be protected in respect of their language, script and culture, and no laws or regulations may be enacted that may operate oppressively or prejudicially in this respect.' "

[(1) प्रत्येक प्रदेश में भाषा, लिपि और संस्कृति के सम्बन्ध में अल्पसंख्यकों की रक्षा की जायेगी और कोई ऐसे कानून अथवा आनियम न बनाये जायेंगे जिनसे इस सम्बन्ध में उत्पीड़न हो अथवा विपरीत प्रभाव पड़े।]

यह संशोधन जो मैंने पेश किया है कोई नया संशोधन नहीं है। यह वास्तव में अप्रैल 1947 ई. में इस सभा द्वारा किये गये मूल निर्णय को यहां रखने का प्रस्ताव है। श्रीमान्, आपको स्मरण होगा, उस समय मैं तो सदस्य नहीं था, पर मुझे कमेटी की रिपोर्ट प्रथम ग्रन्थमाला 1947 ई. से विदित हुआ है कि मूलाधिकार समिति ने यह रिपोर्ट की थी कि यह खण्ड जिस रूप में मैंने रखा है उस रूप में रखा जाये। रिपोर्ट के पृष्ठ 30 पर यह खण्ड इस प्रकार है:

"Minorities in every unit shall be protected in respect of their language, script and culture, and no laws or regulations may be enacted that may operate oppressively or prejudicially in this respect."

(प्रत्येक प्रदेश में भाषा, लिपि और संस्कृति के सम्बन्ध में अल्पसंख्यकों की रक्षा की जायेगी और कोई ऐसे कानून अथवा आनियम न बनाये जायेंगे जिनसे इस सम्बन्ध में उत्पीड़न हो अथवा विपरीत प्रभाव पड़े।)

मूलाधिकार समिति की इस सिफारिश को अप्रैल सन् 1947 में इस विशिष्ट सभा ने स्वीकार कर लिया था। पर आश्चर्य की बात है कि मसौदा-समिति ने...।

***उपाध्यक्षः** क्या वह मूलाधिकार समिति की उप-समिति है ?

***श्री ज़ैड.एच. लारीः** जी हां, वह एक उपसमिति थी और उसकी रिपोर्ट इस सभा द्वारा स्वीकार भी कर ली गई थी, पर मसौदा-समिति ने, जिसको इस सभा द्वारा पास किये गये प्रस्तावों के आधार पर विधान का मसौदा बनाने का कार्य सौंपा गया था, पदों को बदल दिया है और अब वर्तमान उप-खण्ड इस प्रकार है:

"Any section of the citizens residing in the territory of India or any part thereof having a distinct language, script and culture of its own shall have the right to conserve the same."

(भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी वर्ग को, जिनकी अपनी विशेष भाषा, लिपि और संस्कृति है, उनके संरक्षण का अधिकार होगा।)

जिन कारणों से इस संशोधन को पेश करने के लिये मैं प्रेरित हुआ हूं और इस खण्ड को अपने मूलरूप में रखना चाहता हूं वे संक्षेप में ये हैं।

श्रीमान्, मेरा विश्वास है कि यह सबने मान लिया है कि सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों की रक्षा की जाये और अनुच्छेद 23 का यही उद्देश्य है। इस बात का कोई विरोध नहीं हो सकता है। अपने मूल रूप में तथा सभा द्वारा स्वीकृत रूप में यह अनुच्छेद निर्धारण करता था कि ऐसे कोई कानून अथवा नियम स्वीकार नहीं किये जायें, जो अल्पसंख्यक-वर्गों की निजी संस्कृति और भाषा के संधारण और पोषण करने में उनको कठिनाई में डालें। अर्थात् ऐसे कोई कानून स्वीकार नहीं किये जाने चाहियें, जो उस अधिकार को भी समाप्त करते हों, जिसे किसी एक भाषा-भाषी अल्पसंख्यक-वर्ग को दिया गया हो। परन्तु यदि आप विधान के मसौदे की भाषा पर ध्यान दें, तो उसका केवल यही अर्थ होता है कि अल्पसंख्यक-वर्ग अथवा नागरिकों के किसी वर्ग को अपनी भाषा के संरक्षण का अधिकार होगा। इसका क्या मतलब है? इसका क्या प्रभाव है? इसका केवल यह

मतलब है कि नागरिकों के किसी समुदाय को अपनी निजी बातचीतों में अपनी भाषा के प्रयोग करने का अधिकार होगा। परन्तु प्रश्न तो यह है कि राज्य के खर्च से दी जाने वाली प्राथमिक शिक्षा में अपनी भाषा के प्रयोग करने का उनको अधिकार होगा या नहीं। इसमें संदेह नहीं कि इस अनुच्छेद के एक दूसरे खंड के अन्तर्गत कोई अल्पसंख्यक-वर्ग अपनी संस्थायें स्थापित कर सकता है और इस खंड (1) के आधार पर उस अल्पसंख्यक-वर्ग को अपनी मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा देने का अधिकार है। परन्तु प्रश्न तो दूसरा है। यह प्रत्यक्ष है कि राज्य शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना करेगा और उसे ऐसा करना ही चाहिये। यह भी सब समझते हैं कि बहुत से अल्पसंख्यक-वर्ग अपनी शिक्षा-संस्थायें स्थापित करने की शक्ति नहीं रखते और इस कारण अपनी संस्था स्थापित न कर सकेंगे। ऐसी अवस्था में सवाल पैदा होता है कि क्या ऐसी राज्य से चलायी जाने वाली संस्थाओं में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के बारे में, जो किसी म्युनिसिपल्टी के या प्रान्त के कानून द्वारा सबके लिए अनिवार्य कर दी गई है, क्या ऐसी शिक्षा के पाने के लिये अल्पसंख्यक-वर्ग के लोग यह मांग कर सकेंगे कि वह उनकी भाषा में ही उनको दी जाये।

*__एक माननीय सदस्य :__ असम्भव!

*__श्री ज़ैड.एच. लारीः__ एक आवाज़ आई है कि यह असम्भव है, यदि यह असम्भव है और यदि सभा की मर्ज़ी यही है कि प्राथमिक शिक्षा देते समय भी राज्य के लिये यह आवश्यक न हो कि वह पर्याप्त प्रबन्ध करे तो मेरा निवेदन यह है कि यह पूरा का पूरा खंड कोरी कागज़ी कार्यवाही के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। चाहे जो कुछ हो, इस समय मैं सभा का ध्यान स्वयं उसके ही निर्णय की ओर आकर्षित कर रहा हूं और प्रार्थना करता हूं कि वह इस बात पर विचार करे कि उचित विचार-विमर्श के पश्चात् तय किये गये अपने निर्णय को क्यों रद्द किया जाये। क्या ऐसा करने के लिये कोई कारण है? यदि मूल खंड की भाषा से इसकी भाषा में अधिक सुधार है तो मैं यह अवश्य निवेदन करूंगा कि वह सुधार किया जा सकता है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या इस खंड की परिवर्तित पदावली इस सभा के उद्देश्य को बढ़ाती है, क्या वह सभा के उद्देश्य पर प्रभाव डालती है या उसका खंडन करती है? इस समय मैं सदस्यों से यह निवेदन करूंगा कि वे इस प्रश्न का मनन करें। यदि डॉ. अम्बेडकर का यह मत है कि

[श्री ज़ैड.एच. लारी]

परिवर्तित अथवा भिन्न पदावली से इस अनुच्छेद के उद्देश्य और अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, वे वैसे के वैसे ही हैं, तब तो मुझे आपत्ति नहीं है। परन्तु मेरा निवेदन यह है कि वर्तमान रूप में खंड प्रभावशून्य है; उसका कुछ भी प्रभाव नहीं है। वह एक प्रत्यक्ष सत्य का वर्णन करता है; वह किसी रूप में भी मूलाधिकार नहीं है। उस कानून अथवा आनियमन के होते हुए भी, जो राज्य द्वारा बाद में निर्माण हो, मैं पूछता हूं कि किसी अल्पसंख्यक नागरिकों के किसी वर्ग को, जिस सीमा तक वे अपनी संस्कृति का पालन और अपनी भाषा का प्रयोग कर सकते हैं, उस सीमा तक संस्कृति का पालन और भाषा का प्रयोग करने से कौन रोक सकता है? सभा इस बात पर ध्यान दे कि राज्य ही सारी शिक्षा देने का कार्य संभाल लेगा; अत: जब तक पहला खंड नहीं रखा जाता, तब तक मेरे विचार से बड़ी कठिनाई होगी। केवल एक यही स्थान नहीं है, जहां कि इस प्रकार के खंड को कानून की पुस्तक में रखने का प्रयास किया गया है। मैं जर्मनी विधान के अनुच्छेद 13 का उल्लेख करूंगा, जो इस प्रकार है:

> "विधान या प्रशासन द्वारा राष्ट्र के उन विभाग की जातीय उन्नति में कोई बाधा न डाली जायेगी, जो अन्य भाषाभाषी हैं। विशेषतया यह बात उनको अपनी भाषा के माध्यम द्वारा शिक्षा पाने में तथा अपने आन्तरिक प्रशासन में और न्याय-विभाग तक पहुंचने के बारे में लागू होगी।"

अत: यह कोई नई बात नहीं है, हो सभा ने की है अथवा मूलाधिकार समिति ने प्रस्तावित की है। इस अनुच्छेद के अर्थ पर विचार करते हुए मेरा निवेदन यह है कि मूलखंड को ही रखा जाये और इस परिवर्तित पदावली को सभा स्वीकार न करे।

इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव को पेश करता हूं।

****उपाध्यक्ष:** सभा कल प्रात:काल के दस बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

तत्पश्चात् बुधवार, 8 दिसम्बर सन् 1948 ई. के प्रात:काल 10 बजे तक के लिए सभा स्थगित की गई।